श्रीमदाचार्य शांतिसागराय नमः ॥

श्रीकानजी स्वामीका एकांतपरिहार

अर्थात

उपादान और निमित्तकी शास्त्रीय चर्चा

लेखक,

तर्करत्न सिद्धांतमहोदधि

श्री पं. माणिकचंदजी न्यायाचार्य कौंदेय

|| श्रीमदाचार्य शांतिसागराय नमः ||

श्री १०८ मुनि मल्लिसागर दि. जैन ग्रंथमालाका १८ वां पुष्प.
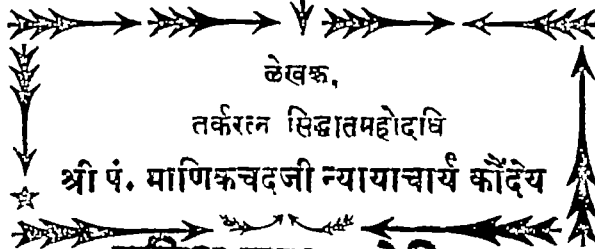
卐

श्रीकानजी स्वामीका एकांतपरिहार

अर्थात्

उपादान और निमित्तकी शास्त्रीय चर्चा

लेखक,

तर्करत्न सिद्धांतमहोदधि

श्री पं. माणिकचंदजी न्यायाचार्य कौंदेय

प्रति १०००

प्रथम संस्करण १९५५

किंमत आठ आना

प्रकाशकके दो शब्द

श्री १०८ मुनि मल्लिसागर दिगंबर जैन ग्रंथमालाका यह १८ वां पुष्प जैन समाजके सामने प्रस्तुत करते हुवे हमें बडी खुशी होती है।

इधर कुछ वर्षोंसे श्री. कानजी स्वामी द्वारा सोनगढमें प्रतिदिन अध्यात्म-प्रवचन होता है। आत्मधर्म नामके एक सामयिक पत्रमें और जो साहित्य वहांसे प्रकाशित होता है, उसमें भी अध्यात्मधाराका ही एकांत विवेचन होता है।

इसमें संदेह नहीं कि अध्यात्म यह जैनधर्मका प्राण है। विना अध्यात्मके जीवनका कोई मूल्य नहीं। परंतु यह भुलादिया जाता है कि जीवनसंधारणके लिये जैसे बाह्यतः वायु, पानी और भोजनकी नितांत आवश्यकता है; उसी तरह अध्यात्मकी आंतरिक संसिद्धिके लिये व्यवहारधर्मकी भी। अध्यात्म प्रवचनमें इसी खास बातको भुला देनेका परिणाम विपरीत निकला है। लोग आत्म-शुद्धिकी कारणभूत पूजा, पाठ, संयमपालन, दान आदि सामग्रीको भूलते जा रहे हैं। विना बीजके जैसे फलकी प्राप्ति असंभव है, उसी तरह इन कल्याणभूत सामग्रीके विना अध्यात्मरूपी फलकी आशा करना व्यर्थ है—कपोलकल्पित है।

कुछ लोग यह कहते हुवे पाये गये कि श्री. कानजीस्वामी भले ही अपने उपदेशमें उपादानको ही महत्त्व देते हों, किंतु उनका जीवन प्रवृत्यात्मक है। स्थान २ पर उनके तत्वावधानमें

होनेवाली बड़ी २ बिंबप्रतिष्ठायें, भव्य जिन मंदिरोंका निर्माण एवं विशालकाय दिगंबर अरहंत प्रतिमाओंका संस्थापन उनकी नैमित्तिक प्रवृत्तियोंकी खास विशेषताऐं हैं। अपनी उपादानकी विशेषता लोगोंपर अंकित करनेके लिये वे साहित्य, उपदेश आदि निमित्तोंका आश्रय ले ही रहे हैं। और वे स्वयं भी अपनेको निमित्त बना रहे हैं। फिर उनके अध्यात्म विवेचनका विरोध क्यों ?

किसी भी चीजको इच्छापूर्वक करनेमें और करना पड़नेमें बहुत अंतर है। एक चीज तो ऐसी होती है कि जिसको मनुष्य इच्छापूर्वक करता है। उसमें उसकी भावना अन्तर्निहित होती है। और एक चीज ऐसी होती है कि जिसको मनुष्य भावना या इच्छा नहीं होते हुवे भी किन्हीं बाह्य कारणोंके वश होकर करनेको बाध्य होता है। आजके प्रवृत्तिमय संसारमें श्री. कानजी स्वामी यदि उक्त नैमित्तिक प्रवृत्तियोंको काममें नहीं लेते तो उनका जो स्थान आज समाजमें है—नहीं रहता। वे उन क्रियाओंको भावनावश होकर नहीं करते हैं। उनके साहित्य और उपदेशमें यह स्पष्ट बतलाया जाता है कि पूजा, प्रतिष्ठा, चारित्र आदि बाह्य क्रियाएं सभी मिथ्यात्व है। जब कि जैनागमका पन्ना २ पुकार २ कर कहता है कि देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम आदि क्रियायें सभी सम्यक्त्वकी उत्पादक क्रियायें हैं। बिना निमित्तके उपादान शक्तिकी उद्भूति नहीं हो सकती।

उपादान यदि साध्य है तो निमित्त साधन। मोक्षप्राप्तितक बीज-वृक्षकी तरह दोनोंका अन्योन्याश्रय संबंध है। फिर एकको सम्यक्त्व कहना और दुसरेको मिथ्यात्व अज्ञान ही तो है।

जैन समाजमें प्रशममूर्ति पूज्य क्षु. गणेशप्रसादजी भी अध्यात्मप्रेमी हैं। आपके अध्यात्म प्रवचनमे भी श्रोता लोग झूलने लगते हैं। परमपूज्य चा च. सि. पा. धर्मसाम्राज्य नायक यो चू महाश्रमण श्री १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी तो स्वयं अध्यात्मकी एकमेव मूर्ति ही हैं। परन्तु इनकी विवेचन पद्धतिका आजतक कभी किसीने विरोध नहीं किया। इसलिये कि जहां इन दोनोंके विवेचन प्रणालीमें स्याद्वादकी अपूर्वधारा प्रवाहित होती है, उपादान और निमित्तका अनेकांतके अनुसार सुंदर समन्वय साधा जाता है; वहां श्री कानजी स्वामीके प्रवचनोंमें मात्र एकांत विवेचन होता है।

श्री अमृतचन्द्र सूरिने अपने श्री पुरुषार्थसिध्युपाय ग्रंथमें यह स्पष्ट निर्देश किया है कि जो केवल निश्चयको भूतार्थ और व्यवहारको अभूतार्थ कहते हैं, वे तत्वज्ञानसे शून्य हैं। इनका ज्ञान अंधोंके हाथीके ज्ञानकी तरह मिथ्या है। जैनाचार्योंने स्थान २ पर यह कहा है कि शुभोपयोग रूप समस्त पुण्य क्रियायें धर्म है।

फिर जिनमंदिर, देवपूजन, तीर्थयात्रा, मुनिदान तथा व्रतादि परिपालन ये सब गृहस्थ धर्म है, ऐसा आगम है। श्री कुंद

कुंद स्वामी स्वयं इन्हें धर्म बताते हैं। यदि इन्हें धर्म नहीं मानकर केवल पुण्यकार्य माना जाय तो ये संसारवर्धक ही सिद्ध होते हैं। यह साक्षात् जैनागमका विपरीत रूप है। श्री. कानजी स्वामीने दिगंबर धर्म स्वकल्याणके लिये धारण किया है। न कि विपरीत उपदेशसे दिगंबर जैनशास्त्रोंके विपरीत विवेचन कर स्वपरका अहित करनेके लिए।

वे स्वयं अपनेको अव्रती कहते हैं, और हैं। फिर परमगुरु कैसे कहलाते हैं? क्यों नहीं वे इसका निषेध करते? अपनेसे उच्च पदके धारी क्षुल्लकोंके ऊपर बैठकर जिनाज्ञाका लोप क्यों करते हैं? अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि श्री. कानजी स्वामीका उपदेश और आचरण जैनशास्त्रोंके यथार्थ रूपको नहीं समझनेके कारण अहितकर है।

आगममें तो यह स्पष्ट निर्देश है कि जो एकांत ज्ञानको पकडे हुवे है, वह मिथ्यात्वी है। उसका प्रचार और प्रसार भी मिथ्यात्वरूप ही परिणमता है। श्री. कानजी स्वामीने जो मंदिर मानस्तंभ आदि बनवाये हैं, वे सब धरे रहेंगे। किन्तु उनका साहित्य है, वह अब और भविष्यमें काम करेगा। उनके साहित्य और उपदेशोंका ही यह परिणाम है कि देहली, सहारनपुर, बंबई, कलकत्ता आदि शहरोंमें उनका साहित्य पढनेवाले और साक्षात् उपदश सुननेवाले लोग जो प्रतिदिन पूजा करते थे वे पूजन

करना छोड चुके है। और व्रतादि भी छोड चुके हैं। यह कितना अधर्म और अकल्याण है।

मैं अपने अनुभवके आधारपर कहता हूं कि सोनगढके वातावरणसे प्रभावित लोग संयमके पालनसे दूर होते जा रहे हैं। उनने केवल आत्माको ही सब कुछ समझ रखा है। बाह्य शुभ-क्रियाओंको ढकोसला मान रखा है। वे अपने शरीर सुखके लिये तो सभी नैमित्तिक क्रियाओंको आवश्यक मानते हैं, परंतु खेद है कि आत्मकल्याणकी साधनभूत शुभक्रियाओंको अकिंचित्कर।

मैं एकदफा बंबईमें किसी एक जवेरीके यहां गया था। वे श्री. कानजी स्वामीके उपादानके रंगमें पूरे रंगे हुवे थे। मैं समझे हुवे था कि वे जरूर एक चारित्रशील व्यक्ति होंगे। लेकिन जब जाकर देखा तो दंग रह गया। रात्रीके करीब आठ बजे होंगे। वे पतिपत्नी दोनों भोजन करते हुवे पाये गये। भोजन हो चुकनेपर जवेरी महाशयकी पत्नी महोदया डाक्टरी दवाइयोंके डोस, जो महा अशुद्ध होते हैं, चढा रही थीं। यह प्रभाव है निमित्तको अकिंचित्कर माननेका।

मनुष्य उपादानके भरोसेपर साधनशुचिताके मार्गको भूल जाता है। उसकी स्थिति ' धोबीका गधा घरका न घाटका ' सी हो जाती है। इसीलिये इस एकांतमिथ्यात्वके प्रचारके प्रभावसे समाजको सचेत करनेके लिये समाजके ख्यातनाम विद्वान् सिद्धांत-

महोदधि तर्करत्न पंडितप्रवर माणिकचंदजी न्यायाचार्यने यह छोटासा ट्रेक्ट लिखा है। पंडितजी समाजके माने हुवे प्रखर विद्वान् हैं। आपने जैनागमका आलोडन अत्यंत गंभीरतासे किया है। इसीसे इस ट्रेक्टकी उपादेयता समझी जा सकती है।

श्री १०८ मुनि मल्लिसार दि. जैन ग्रंथमाला समिति पंडितजीका अत्यंत ऋणी है कि जिनने अत्यंत समाजोपयोगी सामयिक ट्रेक्टको प्रकाशित करनेकी अनुमति संस्थाको दी है। आशा है धार्मिक जैन समाजमें इस कृतिका योग्य समादर होगा। समाज स्याद्वाद प्रणालीको समझनेमें चिन्तनशील बनेगा।

समिति वि. वा. पं. वर्धमानजी शास्त्री सोलापुरनिवासीको भी धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकती कि जिनने इस ट्रेक्टके प्रूफ संशोधन एवं इसे यथाशीघ्र मुद्रित करा देनेमें हमें पूर्ण सहयोग दिया।

विनीत,

तेजपाल काला ऑ. मंत्री
श्री. १०८ मुनि मल्लिसागर
दि. जैन ग्रंथमाला

अक्षय तृतीया
श्री. वीर नि. सं. २४८१
नांदगांव (नासिक)

" कारणोंकी शास्त्रानुकूल चर्चा "

प्रमाणनयसत्तर्कैर्न्यक्कृत्यैकान्तिनां गतिं ।
हंसी स्याद्वादगीः शुभ्रा पुनीतान्मम मानसं ॥

महिनों, वरसोंसे जैन समाजमें यह उग्र चर्चा वर्धिष्णु हो रही है कि कार्यको करनेमें उपादान कारण ही प्रधान है। निमित्त कारण कोई कार्यकारी नहीं है, या उपादानकी शक्तिसे वे अपने आप आकर्षित हो जाते हैं।

इन आत्मवादी पण्डितोंके अतिरिक्त दूसरे न्याय सिद्धान्तवेत्ता विद्वान् यों कह रहे हैं कि उपादान, निमित्त, प्रेरक, उदासीन, तटस्थ, अवलम्ब, कारणकारण आदि सभी कारणोंका समुदाय (सामग्री) एकत्रित होकर कार्यका सम्पादन करते हैं। इस विषयमें प्रकाण्ड जैनाचार्योंका क्या अभिमत है ? यह निर्णय करना है।

कार्यकारणभावका विशद प्रतिपादन जैन न्याय शास्त्रोंमें ही मिल सकता है। अध्यात्मशास्त्रोंमें नहीं। जैसे कि गुणस्थान मार्गणा, कर्मबंध, उदय, सत्त्व, लोककी लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, नरक स्वर्गोंमें कितने जीव प्रतिक्षण आते जाते हैं, आदि

का वर्णन करणानुयोग ग्रन्थोंमें पाया जाता है । पुराण पुरुषोंके चरित्र प्रथमानुयोगमें मुख्यरूपसे ग्रन्थित हैं । ये फक्किकायें द्रव्यानुयोगमें नहीं हैं । मुनिचारित्र और गृहस्थचर्याका प्ररूपण चरणानुयोगमें भरा हुआ है ।

तद्वत् समयसार, नियमसार, ग्रन्थोंमें नाममात्र कारणका उल्लेख है । कारणोंके भेद, लक्षण, प्रयोजन, दोष, गुण, संज्ञा इनका पुष्कल व्याख्यान न्यायशास्त्रोंमें ही पाया जाता है, अन्यत्र नहीं । हलवाईकी दूकानसे सुवर्णरत्नालंकार नहीं प्राप्त हो सकते हैं । स्याद्वादका विस्तृत विवेचन अष्टशतीमें है, रत्नकरण्डश्रावकाचारमें नहीं । क्रियाकोषके मन्तव्य प्रमेयकमलमार्तण्डमें नहीं मिलेंगे ।

अध्यात्मशास्त्रके कर्ता भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी तथा समाधितन्त्र, आत्मानुशासनके प्रणेता आचार्य जैसा प्रमाणीक हैं, वैसे ही श्री समन्तभद्राचार्य, भट्टाकलंक देव, श्री माणिक्यनन्दी, विद्यानन्द, मानतुंग, प्रभृति प्रकाण्ड आचार्य भी प्रामाणिक हैं । जैन न्यायप्रणेता आचार्योंके सूत्रवाक्योंको प्रमाण नहीं मानने वालोंके लिये भी यही सिद्धान्तचक्रवर्तीकी प्रतारणा लागू होती है कि:—

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि ॥
(गोम्मटसार)

जिनागमको दिखानेपर भी जो स्वपक्षहठी उसपर श्रद्धान नहीं करता है, वह तभीसे मिथ्यादृष्टि है । श्री आदीश्वर स्वामी और महावीर स्वामीके केवलज्ञान और अनन्तबल कमती बढती नहीं हैं, समान हैं । उसी प्रकार उक्त सभी आचार्योंके वचनोंमें न्यूनाधिक नहीं, समानरूपेण प्रामाण्य हैं ।

यदि किसीको स्वकीयमुक्ति प्राप्त करना है, या अद्वैत समय प्राभृतका अभ्यास करना है, तो वह अन्य अचार्योंके ग्रन्थोंको अप्रमाण नहीं कहेगा । न्याय, व्याकरण साहित्य, गणित एवं चारों अनुयोगोंको भी प्रमाणदृष्टिमें रक्खेगा, निषेध नहीं करेगा ।

यदि कोई उपशमश्रेणीवाला मुनि अद्वैत आत्माका चिन्तन करे तो क्या तद्भिन्न अनन्तानन्त आत्मायें या पुद्गल मर जायेंगे ! किसीकी आंखे ४७२६३ योजनकी चीजोंको देख लेती है, तो उस क्षेत्रके बाहरकी वस्तुऐं नष्ट हो जायेंगी ? अपितु नहीं । शश दृष्टि ठीक नहीं हैं । खरगोश कानोंसे आंखोंको ढक लेवे, एतावता जगद्वर्त्ती पदार्थोंका अत्यन्ताभाव नहीं हो जाता है । अपनी छोटीसी दृष्टिसे आत्मसम्वेदन करे जाओ । अपने कर्मोंका सम्वर निर्जरा हो जानेका लाभ उठाओ । परन्तु इतर वस्तुओंके अभाव सिद्ध कर देनेका किसीको अधिकार नहीं है ।

अद्वैतदर्शन, निश्चयनय, व्यवहारनय, उपचरितनय, शुद्ध नय, ये सब नयें वस्तुके एक अंगको जानती हैं । "वस्त्वेकदेश-ग्राही नयः" । वस्तुका बहुभाग अज्ञेय पडा रहता है । हां,

हाईकोर्टके प्रधानजेज्ज प्रमाण तो वस्तुको पूर्णरूपेण मानते हैं। " वस्तुपूर्णांशग्राहि प्रमाणं "। प्रमाण भगवान् रूक्ष एकान्त दृष्टियोंका प्रतिषेध कर देता है। " एकान्तदृष्टिप्रतिषेधितत्त्वं, प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावं " (वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र)

जैन वाङ्मयमें लाखों करोडों प्रमेय हैं। चार अनुयोग हैं, बीसों उपानुयोग हैं। व्याकरण, छंद, नाट्यकला, ज्योतिष, वैद्यक, बीजगणित, चित्रविद्या, मल्लविद्या, अश्वरत्नपरीक्षा,मंत्र यन्त्र, तंत्र, प्रभृति अनेक विषय भरे हैं। इनका वर्णन आपको समयसार प्रवचनसार, गोम्मटसारमें नहीं मिलेगा। रही आत्मतत्त्व या मोक्ष प्राप्तिकी चर्चा, उससे द्वादशांगवाणीका क्या पूरा पडे ! बनकी अनेक वनस्पतियोंमें एक नागदमनी भी रही आओ। इमलीके करोडों पत्तोंमें एक पत्ता यह भी पडा रहे।

(बात यह है कि आठ जन्मान्धों द्वारा विभिन्न अवयवोंमें पकडे गये हाथीके ज्ञान समान दूसरे अंगोंका खण्डन कर देनेका कोई अधिकारी नहीं है।) किसीको दाल रोटी अच्छी लगती है, किसीको पूडी कचौडीसे प्रेम है, तीसरेको मिठाईसे अनुराग है, चौथा गहना बनवाने, पाचवा मकान सजाने, छठा वाणिज्य बढाने, सातवां अध्यापनमें मस्त है, रहे आओ। (दूसरे धर्मोंका निराकरण करनेवाला कुनय है। अन्य धर्मोंकी अपेक्षा रखनेवाला सुनय होता है।)

तभी तो गोम्मटसार कर्म काण्डमें केवल नियति या स्वभाव अथवा आत्माका कोरा कथन करना आदि मन्तव्य ३६३ मिथ्यामतोंमें गिनाये हैं।

" जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु ॥ "

(गोम्मटसार)

जो, जिस समय, जिससे, जैसे, जिसके नियमसे होता है, वह, उस समय, उससे, तैसे उससे ही होता है। यह नियति नामका मिथ्यात्व है।

" को करइ कंटयाणं तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं,।
विविहत्तं तु सहाओ इदि सव्वंपि य सहाओत्ति ॥"

(गोम्मटसार)

कांटोंमें तीक्ष्णपना कौन करता है ? मृग, पक्षी आदिके न्यारे न्यारे स्वभावोंको कौन बनाता है ? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि सब स्वभावसे कार्य बन जाते हैं। ये सब स्वभाववाद मिथ्यादर्शन है। इसी प्रकार मात्र आत्माके गीत गाना भी आत्मवाद नामका मिथ्यादर्शन है।

(जो जैसा होनहार है, वैसे कारण मिल जायेंगे, और कार्य तदनुसार बन बैठेगा, ऐसे कथनमें कोई सार नहीं है।) जो होन-

हार है, वह होवेगा ही। ये बातें इसी प्रकार फोकट हैं, जैसे कि जो हो चुका सो होटी चुका, जो हो रहा है, सो हो ही रहा है। यह कालस्वानुसार कायर मार्गोको बकवाद व्यर्थ है।

बात यह कि न्यायशास्त्रोंमें दो पक्ष माने गये हैं। एक ज्ञापकपक्ष, दूसरा कारकपक्ष। सर्वज्ञ देखने जैसा देखा है, वैसा देखा है, वैसा होकर ही रहेगा। द्वारिकादाह जैसा नेमिनाथ भगवानने कहा था वैसा ही हुआ। क्या हुआ ? विशिष्टज्ञानी आगे पीछे होनेवाले कार्योंको जान लेते हैं, वैसा कह देते हैं। चींटियाँ, मक्खियां, आनेवाली वर्षाको जानकर प्रथमसे ही निरापद स्थानमें चली जाती हैं। सूहर दो घण्टे प्रथम आंधी तूफानको जानकर दो, चार, मीलसे दौडा आकर अपनी मिटीमें छिप जाता है। समुद्री तूफानको आनेवाला ज्ञातकर मछलिया अवस्तलमें चली जाती हैं। चतुर वैद्य या डाक्टर रोगीको देखते ही आगे पीछेकी हालतोंको कह देता है, कि यह म्यादी बुखार है। २१ या ४२ दिनमें जायेगा, यह श्लेष्म बिगडनेसे उपजा है। तान-सेन हकीम महारोगोंकी महिने दो महिने आगे पीछे प्रतिदिन प्रति घण्टेकी अवस्थाको बता दिया करते थे। ज्योतिषी लोग भी शुक्र अस्त उदय वा चन्द्र सूर्य ग्रहणके ठीक समयोंको वर्षों प्रथम बता देते हैं। ये सब ज्ञापकपक्ष हैं। कारकपक्ष इससे

न्यारा है। यदि अंधेरेमें पावमें कांटा लग गया तो आप कांटेको यह उलाहना नहीं दे सकते हैं कि हमको तुम्हारा ज्ञान नहीं था, तुम क्यों लगे ? कांटा टकासा प्रत्युत्तर दे सकता है कि हम कारक पक्षमें हैं। ज्ञान अज्ञानकी हमको आकांक्षा नहीं है। कार्य, कारण, भावका प्रसंग मिल जानेपर हम अपनी करतूत कर बैठेंगे, कोमलचर्मका प्रसंग मिलेगा, हम पार घुस जायेंगे, यदि लोहे पत्थरका हमपर आक्रमण होता तो हमारा मुख ही टूट जाता। औषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं, मल्हमसे फोडा घाव अच्छे हो जाते हैं। कर्मोंके उदय बदले जा सकते हैं। कर्मोंमें संक्रमण, विसंयोजन, उदीरणायें, प्रदेशोदय हो जाते हैं। पुण्यकर्म पाप बन बैठता है। पाप भी पुण्यरूप हो सकता है। जैसे कारण मिलेंगे वैसा कार्य हो जायेगा। निमित्त नैमित्तिक कर्मोंकी शक्ति अचिंत्य है। कारणोंकी अतीन्द्रिय शक्तियोंका संसारी जीवोंको पूर्ण परिज्ञान नहीं है। अतः कभी कभी कार्योंको करनेमें असफलता भी हो जाती है। सर्वज्ञ देव कोई घट पट बनाना आदि कार्य करते नहीं हैं। हम आप अल्पज्ञ काम करनेवाले कारणोंकी अन्तरङ्गशक्तियोंके ज्ञाता नहीं हैं। अतः कारकपक्ष और ज्ञापकपक्षका मिलान करो। अच्छे निमित्तोंको सर्वदा जुटाते रहो, इष्टसिद्धि हो ही जायगी। देखिये, सुकमाल, अञ्जनचोर गजकुमार सरीखे मोही जीव छोटे छोट निमित्तोंसे मोक्षमार्गमें लग बैठे। अतः दर्शन, पूजन, दान, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, आदि

निमित्त कारणोंको मिलाकर इस रागी, द्वेषी, आत्माको अन्तरात्मा बना लिया जाय, अपने मूर्त संसारी जीवको सदा शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन परमात्मा स्वरूप नहीं मान बैठना चाहिये। अन्यथा सांख्यमतका प्रवेश हो जायेगा।

जैसे एकान्त आत्मवादी आत्मापर पूरा सदकबल उत्तरदायित्व रखते हैं, वैसे एक नयसे शब्दाद्वैत, ज्ञानाद्वैत, चित्राद्वैत, पुद्गलाद्वैत, पर भी प्रमेयभार रक्खा जा सकता है। वे भी एक एक नयसे विचारार्ह विषय हैं। तभी तो सिद्धचक्रविधानमें शब्दाद्वैतवादीको एक दृष्टिसे भगवान् स्वरूप मानकर अर्घ्य चढाये गये हैं। षोडशपदार्थवादिने नैयायिकाय अर्घ्यं, पञ्चविंशतितत्त्ववादिने सांख्याय अर्घ्यं।

आत्माके समान शब्द आदिके दृष्टि कोणमें भी अनेक गुण दीखते हैं। "जेत्तिय मित्ता सद्दा तेत्तिय मेत्ताह्न होन्ति नयवादा" जगत्में जितने शब्द हैं उतने नय हैं। नयचक्र, नयविवरण, आलापपद्धति ये नयग्रन्थ हैं। तारकोद्योत और सूर्यप्रकाशमें महान् अन्तर है। हां, तत्त्वार्थसूत्र, स्वयम्भूस्तोत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तण्ड, श्लोकवार्तिक ये सब प्रमाण ग्रन्थ हैं। पूर्ण वस्तुके प्रतिपादक हैं। अशुद्ध द्रव्यका भी व्यापकरूपेण परिज्ञान करते हैं। वस्तुके भावाभावात्मक, गुणपर्यायात्मक, उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक, स्वपरोपाधिपरिणामात्मक,

सप्तभंगीव्याप्यात्मक, कारणकार्यस्वरूप, क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाकारित्व, वस्त्वन्तरसम्बन्धाविर्भूतानेकसम्बन्धिरूपत्व, अन्वयव्यतिरेकात्मत्व, अन्यापेक्षाभिव्यंग्यानेकरूपोत्कर्षापकर्षपरिणतगुणसंबंधित्व, इत्यादिक अनेक प्रमेयरूप न्याय शास्त्रोंमें कहे हैं। राजवार्तिकमें समझाये हैं, वे अन्यत्र शास्त्रोंमें नहीं पाये जाते हैं। जैसे कि प्रत्येक पदार्थपर लाखों असंख्य अभाव लद रहे हैं, एक भी प्रागभाव, ध्वंस या अत्यन्ताभावका तिरस्कार कर दोगे तो वस्तु पर्यायें अनादि, अनन्त, सर्वात्मक बन बैठेंगी। सौ वर्ष भविष्यमें पैदा होनेवाले बच्चोंको आज ही जन्मा लिया जाय या सौ वर्षके स्मशानों (मुर्दाघाटों) पर अमृतसिंचन कर दिया जाय तो वर्तमान मानवोंको खानेको एक दाना और ठहरनेको एक अंगुल स्थान नहीं मिल सकता है। सबकी घिच्चपिच्च चटनी बनकर अकाल मृत्युयें हो जायेंगी। महाप्रलय छाजायेगी। अत्यन्ताभावको नहीं माननेपर पुद्गल जीव बन बैठेगा, सब जीव जड पुद्गल हो जावेंगे। अतः भावात्मक गुणोंके समान अभाव स्वरूप अनन्तानन्त गुणोंको भी वस्तुका तदात्मक स्वरूप मानना चाहिये मिथ्याज्ञान भी स्वको जाननेमें प्रमाण है। "भावप्रमेयापेक्षया प्रमाणाभासनिन्हवः" इस ज्ञेय तत्त्वका आद्यवर्णन देवागममें ही है। समयसार, मूलाचार, प्रतिष्ठापाठोंमें नहीं है। सप्तभंगीका विशद वर्णन अष्टसहस्रीमें है। भक्तामरमें नहीं।

"यावन्ति कार्याणि तावन्तः स्वभावभेदाः"। यावन्ति पररूपाणि प्रत्येकं परावृत्तिलक्षणाः स्वभावभेदाः प्रतिक्षण प्रत्येतव्याः। सम्बन्ध्यन्तराणि भावस्वभावभेदकानि॥

इन अकलंक तत्त्वोंका व्याख्यान, जैसे अष्टसहस्रीमें है, वैसा अन्यत्र नहीं है। इस एक तत्त्वपर ही अष्टसहस्रीकी महती प्रतिष्ठा बढ गयी है। भले ही आज कोई नहीं गावे। इसके बदलेमें आजकल समयसारकी महिमा बखानी जाती है। यों परिवर्तन होते रहते हैं। कभी ब्रिटिश राज्यके गीत गाये जाते थे, अब कांग्रेसके, आगे न जाने किस किसके गाये जायेंगे।

जीयादष्टसहस्री श्रुतैः किमन्यैः सहस्रसंख्यानैः।
विज्ञायते ययैव स्वसमयपरसमयसद्भावः॥
अष्टसहस्री कुरुते दुष्टसहस्रीं सुनिर्मदाम् भुवने।
कष्ट सहस्रीनाशं, भृष्टसहस्रीं पदप्रणतां॥

भावार्थः—अहिंसाके साथ सत्यव्रत है, तो अहिंसा चतुर्गुण हो गयी, अचौर्य गुण भी है, तो बीस गुनी, यदि ब्रम्हचर्य भी है, तो अहिंसामें सौ गुने अविभाग प्रतिच्छेद बढ गये। हजार भाइयोंकी सभामें एकके चले जानेपर या आ जानेपर सो जानेपर या उन्मुख सुननेपर, प्रकाश कमती बढती हो जानेपर, लाउड-स्पीकर बिगड जानेपर, वक्ताके ज्ञान, वक्तृता, चेष्टा आदिमें नवीन

परिणाम, उपजते रहते हैं। यदि कोई बालक पांच गज ऊंची छतसे गिर जाय, तो प्रथम गज, दूसरे गज, तीसरे गज, पर उस बालकके चर्म, रक्त, हड्डीके न्यारे न्यारे गुरुत्व, वेग, अनुसार परिणाम हैं। तभी तो कभी सिर फट जाता है, हड्डी टूट जाती है, रक्त न्यून, अधिक, निकलता है। प्रत्येक प्रदेशपर गिरते हुये बालक शरीरकी भिन्न भिन्न परिणतियां हैं। यदि चार गज नीचे आकर रुक जाता तो कम चोट लगती, पांच गज नीचे रुका यों अधिक चोट लगी। सिर, बांह, पीठके बल गिरनेसे भी चोटमें अन्तर हो जाता है। पटिया, कच्ची धरती, खाटिया, गद्दापर गिरनेमें भी चोटमें विशेषता आती है। तत्काल चिकित्सा; विलंबसे पट्टी पलस्तर करनेसे भी तारतम्य पडता है। उम्र, ऋतुयें, ऊर्ध्वश्वास, अधःश्वास, सोती, जागती, भूंख, प्यास, तृप्त ये परिस्थितियां भी चोटमें प्रभाव डालती हैं। कभी चोट बिल्कुल नहीं लगती है। ये स्थूल दृष्टिसे कारण बताये। सूक्ष्म लक्ष्य देनेपर परमाणु परमाणु और प्रदेश अपने कार्योंमें तरतमता डालते हैं। इस तत्वका रहस्य कार्यकारणभावके अन्तप्रवेशी विद्वान् समझ सकते हैं, दूसरोंको ये बातें निस्तत्त्व दीखती हैं। "भिन्नकार्याणां भिन्नकारणप्रभवत्वावश्यम्भावनियमात् (न्यायदीपिका)

भयके स्थानपर रात्रिको अकेले धनिकको दो अथवा चार बन्धुओं एवं शस्त्रधारी आठ स्वपक्षीय सैनिकोंके सन्निधान होनेपर

धनिकके परिणाम न्यारे न्यारे हो जाते हैं। कभी उपादान कारण सहकारियोंमें अतिशय धर देता है। कदाचिद् अनेक सहकारी कारण वृध्दू उपादानमें बलात्कारेण नाना चमत्कार घूंस देते हैं। ऐसे बीसों प्रमेयोंका अष्टसहस्रीमें निरूपण है। इन व्याख्याओंसे अष्टसहस्रीका यश इतना बढ गया है कि आचार्य कहते हैं। " अकेली अष्टसहस्रीका ही जन्मभर स्वाध्याय करे जावो, हजारों अन्य शास्त्रोंके अध्ययनसे कोई लाभ नहीं, केवल अष्टसहस्रीसे ही स्वसमय और परसमयका सिद्धान्त ज्ञात हो जावेगा। " एक अष्टसहस्री ही जयवन्ती रहे, जो कि हजारों दुष्ट प्रतिवादियोंके गर्वका निवारण कर देती है, हजारों लौकिक कष्टोंका नाश कर देती है, पथभ्रष्ट हजारों प्रतिवादियोंको स्वकीय चरणोंमें नम्रीभूत करा देती है '। बात यह है कि जिनशासनके अनेक ग्रन्थ कार्यके अनेक बहिरंग कारणोंका प्रतिपादन कर रहे हैं। एक उपादान कारण और बीसों सहकारी कारण पहिले मिलते हैं। एक दूसरेमें परस्पर परिणाम उपजाते हैं। पुनः अंत्यकारण सामग्री अव्यवहित अग्रिमक्षणमें कार्यको उपजा देती है। श्री उमास्वामी महाराजने प्रमाण ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्रमें " तन्निसर्गादधिगमाद्वा " सूत्र द्वारा सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें बहिरङ्ग कारण " निसर्ग " यानी जिनबिम्बदर्शन, देवऋद्धि अवलोकन, नारकीय दुःख वेदना और परोपदेशको स्वीकार किया है। यहां हेतु यानी निमित्तकारणमें पञ्चमी विभक्ति है। श्री माणिक्यनन्दी

ने परीक्षामुखमें कहा है कि " तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भाव–भावित्वं " । उस कारणके होनेपर उस कार्यका होना कारणके व्यापारोंपर इसी प्रकार निर्भर है । जैसे कि सम्यग्दर्शन हो जाने-पर भी महाव्रतोंके धारण करनेपर ही मोक्ष हो सकती है । विवाह हो जानेपर भी दम्पतियोंके शरीर व्यापारके अधीन सन्तान उत्पन्न होगी । ज्ञान, इच्छा, प्रयत्नोंका आधार कुम्हार स्वजन्यभ्रमिजन्य कपालद्वयसंयोगरूप व्यापारधारी दंड द्वारा घटको बना डालता है । इसी प्रकार " नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः " " तत्कृतः काल विभागः " " तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरण" " विग्रह-गतौ कर्मयोगः " 'आकाशस्यावगाहः' 'शरीरवाङ्मनः' यों सब कारणोंका ही प्रतिपादन किया है । जीव कर्मके योग्य पुद्गलोंको बांधता है । " सकषायत्वाज् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते" यों जीवको ही आस्रवक और बन्धक कहा है । द्रव्यमें वर्तना करानेका बहिरङ्ग कारण काल द्रव्य है । " प्रतिद्रव्यमन्तर्नी-तैकसमया स्वसत्तानुभूतिर्वर्तना " (राजवार्त्तिक)

प्रतिक्षण वर्तना करना कालका कार्य है । यद्यपि पर्याय बदलना, रूपद्रवणका अन्तरङ्ग कारण द्रव्यका द्रव्यत्व गुण है । वह एक दिन या एक वर्षमें बदल जाती तो भी कृतकृत्य हो सकता था । किन्तु शुद्ध, स्वतंत्र परमात्मा सिद्धोंको भी प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य या वर्तना करने पडते हैं । प्रति दूसरे क्षणमें नवीन पर्यायें धारण करनी पडती है । " द्वितीयक्षणवर्ति-

ध्वंसप्रतियोगित्वं क्षणिकत्वं ”-ये सब कालाणुओंकी करतूतें हैं। “ अन्तर्नीतः एकसमयोऽनया उत्पादव्ययध्रौव्यैकवृत्तिः ” (राज, वार्तिक पृष्ठ २२४) “ जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षयते, विनश्यति ” (राजवार्तिक पृ. १७२) “ मनुष्यनाम कर्मोदयापेक्षया आत्मा मनुष्यादित्वेन जायते ” यहां आत्माका मनुष्य आदि रूपसे उपजना, बढना, अवस्थायें बदलना, घट जाना, विनश जाना स्वीकार किया है। “ द्रव्याणि ” सूत्रके व्याख्यानमें श्री अकलंक देवने सम्पूर्ण द्रव्योंमें हो रहे उत्पाद विनाशके कारण स्व और पर दोनों माने हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको बाह्य प्रत्यय माना है। यहां पञ्चाध्यायी ग्रन्थके अनुसार अपने ही गुण या पर्यायोंको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नहीं पकडा गया है। ये तो अन्तरङ्ग पदार्थ हैं। हां, बाह्यकारण द्रव्यादि इनसे सर्वथा पृथग्भूत हैं।

उदयके लक्षणमें ‘द्रव्यादिनिमित्तवशात् कर्मणः फलप्राप्तिरुदयः’ यों कर्मोंके फल देनेमें भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंको, निमित्त कारण स्वीकार किया है।

“ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ” (सर्वार्थसिद्धिः)

इस सूत्र द्वारा सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें अनेक बहिरङ्ग कारणों या निमित्त कारणोंका ही निरूपण है। निसर्गका अर्थ स्वभाव नहीं करना। अन्यथा एकेन्द्रिय, द्वि इंद्रिय यों अभव्य जीवोंके भी

सम्यग्दर्शन बन बैठता । यों जिनबिंबदर्शन, जातिस्मरण, जिन-महिमावलोकन, देवर्धिदर्शन, वेदनाभिभव भी सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें सहकारी कारण हैं । परोपदेश भी पुद्गलपर्याय होकर बहिरंग निमित्त है । जो तीर्थंकर होनेवाले हैं, उनको भी पूर्व, जन्मोंमें परकीय देशना लब्धिकी आवश्यकता है । पाच लब्धियां भी बहिरंग कारण हैं । सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें उपादान कारण तो आत्मा या उसके सम्यक्त्व, चारित्र, चेतना, वीर्य, सुख इन विशेष गुणोंमें गिनाया गया सम्यक्त्व गुण है ।

भव्य, संज्ञीपन, पर्याप्त, साकारोपयोग, जागृत अवस्था, आदि योग्यतारूप या कुछ कर्मोंका दब जाना क्षयोपशम लब्धि बहिरंग कारण ही है । आत्माके अन्य परिणामोंकी विशुद्धि भी बाहरकी चीज है, देशना तो शब्द आत्मक जड पदार्थ है ही । कर्मोंकी अंतःकोटाकोटी प्रमाण स्थिति रह जाना या इतनी स्थितिका बंधना भी कर्मोंकी अवस्था बहिरंग कारण है । सम्य-ग्दर्शन गुणकी उपशम सम्यक्त्वस्वरूप परिणतिमें चारित्र गुणके अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, परिणामस्वरूप करणलब्धि भी बहिरंग कारण पडेगी । मोक्ष जानेमें अधिकसे अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल शेष रह जाना नामक काल लब्धि तो बहुत दूर बाह्य व्यवहार काल है ।

" तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तं " इंद्रिय और मनको, निमित्त मिळाये बिना केवल आत्मा—उपादानसे मतिज्ञान नहीं उपजता है। नहीं तो सिद्धोंके भी मतिज्ञान बन बैठे।

" स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः (देवागम) " " नयो ज्ञातुरभिप्रायः " " वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः " वचनका प्रयोग करना या ज्ञाताका अभिप्राय ऐसा नय विचारा पूर्ण वस्तुको कैसे समझा सकता है ? वस्तुका एक अंश कहे जाओ, विचारे जाओ। प्रमाण मन्य चीफहाईकोर्टकी गद्दीपर विराजे हुए हैं। एक एंक नय अनेक वकीलोंके सदृश अपने अपने दृष्टिकोणोंको बखाने जाओ। पृष्ठ ६४ में औदयिक भावोंको भी आत्माका निजतत्त्व माना है। भावी महापद्म तीर्थंकरके द्रव्यको जब देखा जायगा, तब श्रेणिक और प्रथमनरककी पर्यायें भी उसी पंक्तिमें बैठेंगी।

एय दवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि।
तीदाणगादभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥

(गो. सा. पृ. २१५)

गंगोत्तरीसे लेकर गंगासागरतक लाखों, अरबों, खरबों जल धाराओंके अखण्ड पिण्डको गंगानदी माना जाता है। तद्वत्-

भूत, वर्तमान, भविष्य कालकी अनन्तानन्त पर्यायोंकी अविष्वग्-भावपंक्तिको पूरा द्रव्य कहा गया है। यों औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक सभी भावोंका समुदाय वस्तुशरीर है। केवल क्षायिक भावोंको ही आत्मद्रव्य कह रहा पण्डित प्रमाणज्ञानधारी नहीं है, जब कि सूर्योपम १२,००० किरणोंको लिये हुए प्रमाण वाक्य चमक रहे हैं कि:—

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥

(गो. सा. पृ. २१५)

त्रिकालवर्ती सभी अर्थपर्यायों और व्यञ्जन पर्यायोंके मिलने-पर वस्तु व्यवस्थित होती है। एक भी पर्यायके छूट जानेपर लंगडी, कानी हो जायेगी।

जरायुज, अण्डज, पोत, नारक, सन्मूर्च्छी, त्रस ये सब जीवोंके भेद हैं, पुद्गलोंके नहीं।

तत्प्रदोष, निन्हव, आदि, दुःख, शोक, अनुकम्पा, नीचै-र्वृत्ति आदि आत्मपरिणामोंसे ज्ञानावरण आदि कर्मोंका आस्रव होता है। गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र और ध्यान इन आत्मपरिणामोंसे कर्मोंकी सम्वर, निर्जरायें होती

है । गुप्ति, समिति आदि भी आत्माके विकार हैं, स्वभाव नहीं। स्वभाव होते तो सिद्धोंमें भी पाये जाते । तत्त्वार्थसूत्रकारने मोक्ष अवस्थामें सम्यक्त्व, केवलज्ञान, क्षायिक दर्शन, सिद्धत्व प्रभृतिभाव ही माने हैं। औपशमिकभाव, भव्यत्व क्षपक श्रेणी, महाव्रत, शुक्लध्यान- ध्यान आदि भावोंका अभाव स्वीकार किया है । सिद्ध भगवान् तो एक पर्यायविशेष हैं, पूर्ण द्रव्य नहीं। पर्याय दृष्टिसे आप सिद्धोंको जानते रहिये । द्रव्यदृष्टिसे या प्रमाणदृष्टिसे सिद्धोंको जानोगे तब तो आगे पीछेकी अनन्त पर्यायें आपको अवश्य जाननी पड़ेंगी। काले विच्छूका पांच सौवा भाग हालाहल भयभयावह है, किन्तु शेष चार सौ निन्यानवै भागों भी विच्छूका शरीर है ।

" प्रमेयकमलमार्तण्ड "

पत्र ३० वे में कारणोंके व्यञ्जक कारण, कारककारण, अवलम्ब कारण, उपादान कारण, सहकारी कारण ये भेद गिनाये हैं ।

स्वसामग्रीतः सकलभावानामुत्पत्त्यभ्युपगमात्,
उत्पादककारणकलापात् कार्यमुत्पद्यते ॥ (पत्र १९)

कार्यकी उत्पत्ति करनेवाले अनेक कारणोंके समुदायसे कार्य उपजता है । पत्र ७८ में भूमि आदिको सकल कार्योंके प्रति साधारण कारण माना है । उपभोक्ता ऐरेगेरे प्राणियोंके पुण्य, पाप, की विचित्रतासे ही कार्योंमें विलक्षणता आती है । यों संसारके

बहुभाग कार्योंमें साक्षात् या परम्परया जीवोंके अदृष्टको कारण स्वीकार किया है। आगे चलकर ज्ञान, इच्छा, प्रयत्नोंकी उत्पत्तिमें समवायिकारण, असमवायिकारण, निमित्तकारण तीनों कारण माने हैं। श्री प्रभाचन्द्र स्वामीने इस नैयायिक मान्यताका कोई खण्डन नहीं किया है। जब कि अन्य वैशेषिक मान्यताओंका निराकरण कर दिया है। मार्तण्डमें लिखा है कि कर्त्ता सभी कारणोंको जाने, ऐसा नियम नहीं, एक कार्यमें पचासों भी कारण हो सकते हैं। सोते या मूर्छा अवस्थामें हाथ पांवका प्रेरकपना उपादानको जाने बिना भी बन बैठता है। कभी दस कारणोंमें दो, चारका ज्ञान होता है, अन्य दो, चार कारणोंका ज्ञान नहीं भी होता है। जैसे कि कुम्हारको दण्ड, चक्र, आदिका ज्ञान है, स्वकीय, या घटभोक्ताके पुण्य, पाप, आकाश, वृष्ट्यभाव आदिका ज्ञान नहीं है, अन्यथा इच्छाव्याघात नहीं होना चाहिये। सभी छात्र परीक्षामें पास हो जाने चाहिये। औषधियों करके सभी रोगी नीरोग हो जाने चाहिये, किन्तु इसमें अन्वय व्यभिचार और व्यतिरेकव्यभिचार देखे जाते हैं। कारणोंकी शक्तियां अतीन्द्रिय हैं। सर्वज्ञके अतिरिक्त सभी प्राणियोंको उनका ज्ञान नहीं है। इस प्रकरणमें श्री प्रभाचन्द्र स्वामीने "कार्यत्वावच्छेदकावच्छेदेन" अदृष्टको निमित्तकारण मानना अनिवार्य कहा है। सिद्ध भगवान् अपने कर्मोंका क्षय कर देनेसे होते हैं, फिर भी सम्भव है कि

सिद्धोंका ध्यान करनेवाले संसारी जीवोंका अदृष्ट भी सिद्धावस्थाका कारण माना होय, जब कि यावत् कार्योंमें अदृष्टको कारण माना गया है। "यद् यद् उपभोग्यं तत्तददृष्टपूर्वकं सर्वत्र कार्ये अदृष्टस्य व्यापारात्"। आचार्योंके अभिप्रायपर गंभीर दृष्टि डालिये। संभव है, यहां उपभोग्य लौकिक कार्योंका ही ग्रहण होय, सिद्ध दशा अलौकिक है।

राजा पालकीमें बैठा जा रहा है। यहां राजाके गमनमें राजा उपादान कारण है, पालकी ढोनेवाले चार या दो कहार प्रेरक निमित्त हैं। प्रजाका पुण्य, पाप, सहकारी कारण है, पालकी अधिकरण कारण है, राजाकी इच्छा स्वतंत्रकारण है, धर्म- द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य भी उतनी ही अनन्तशक्तिको लिये हुए उदासीन कारण हैं। ये सब कार्यकारणभाव प्रभाचन्द्रस्वामीने कण्ठोक्त बताये हैं। कोई कह देते हैं कि वज्रवृषभनाराच संहनन अनेकों वार मिल चुका है, फिर अबतक मोक्ष क्यों नहीं हुई ? केवलिद्वयका समवधान सैकडों बार प्राप्त हो चुका है, तब क्षायिक सम्यक्त्व या तीर्थकरप्रकृतिका आस्रव क्यों नहीं हुआ ? इन कटाक्षोंका उत्तर मार्तण्डमें यों दिया गया है कि "न ह्येक-कारणप्रभवं कार्यं सामग्रीप्रभवत्वात्कार्याणां" एक दो कारणोंसे ही कार्य नहीं पैदा हो जाता है, किन्तु पूरे अनेक कारणोंकी समग्रता रूप सामग्रीसे कार्य उपजता है। मोक्ष भी अनेक कारणोंसे होती

है। "सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणं" (परीक्षामुख)। यों वज्रवृषभनाराचसंहनन, क्षायिकसम्यक्त्व, नरलोक, कर्मभूमि, क्षपकश्रेणी, पूर्णरत्नत्रय, शुक्लध्यान आदि सामग्रीके मिलने पर ही मोक्ष होती है। अकेले उपादानसे या एक दो, अन्य कारणोंसे मोक्ष नहीं हो पाती है। मोक्षतक सात राजू जानेमें धर्मद्रव्य कारण है। तनुवातवलयके पन्द्रहसौवें भाग या नौलाखवें भाग अथवा मध्यवर्ती भागोंमें ठहरे रहनेका कारण अधर्मद्रव्य है, सिद्धोंकी वर्तना होते रहनेमें कालद्रव्य कारण है। अवकाश देनेमें आकाश द्रव्य उदासीन कारण है। तभी तो "धर्मास्तिकायाभावात्" यह हेतुमें पञ्चमी कही गयी है। "विस्ससोड्ढगई" यों ऊर्ध्वगमन स्वभाव होते हुए भी सिद्ध भगवान् धर्मद्रव्य नहीं होनेसे तनुवात वलयसे ऊपर अलोकमें नहीं जा सकते।

"अविकले कारणे कार्यस्योत्पत्तिः" (मार्तण्ड पत्र १०२)

"विकल कारणसे कार्य नहीं होता है, किन्तु सम्पूर्ण अविकल कारणोंसे कार्य उपजता है। "अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः"।

११८ वें पृष्ठमें ज्ञानके कारणोंमें आत्मासे अतिरिक्त अवलम्ब कारण और अधिपति कारण अलग गिनाये हैं। १४५ वें पत्रमें अन्तिम कारण सामग्रीको कार्यका उत्पादक माना है। "अन्त्या

कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने हेतुः "। १४७ वें पत्रवें उपादान कारण और अनेक सहकारी कारणोंको समान रूपसे कार्यजनक इष्ट किया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड कार्यकारणभावकी प्ररूपणासे भरा पडा है। "अस्त्यत्र छाया छत्रात्" इस सूत्रका विवरण करते हुए अन्त्यक्षणप्राप्त प्रतिबन्धकाभावविशिष्ट सामग्रीको अव्यवहित उत्तर क्षणमें कार्यजनक स्वीकार किया है, "न हि अन्त्यक्षणप्राप्तं कारणं लिंगमिष्यते येन उत्तरक्षणो कार्यप्रत्यक्षीकरणादनुमानमनर्थकं स्यात् "।

१४९ वें पत्रमें कारणकार्योंका पूर्वापरक्षणवर्तित्व अभीष्ट किया है। बाप, बेटा यह व्यपदेश ही एक समयमें हैं, जभी बाप है तभी बेटा है और जभी बेटा हुआ है तभी बाप बना है। किन्तु जनक और पुत्रकी उत्पत्ति तो भिन्न- भिन्न समयोंमें है। दीपप्रकाश, अग्निउष्णताका समानकालीन कार्यकारणभाव भी प्रकाशभारको ही दीपक और अग्निको उष्णस्वरूप मान लेनेपर तादात्म्य पक्षमें व्यवहृत हो रहा है। वस्तुतः अग्निने पानीको गर्म किया है, यहां कारण कार्योंमें समयभेद है। पहिले आत्मलाभ कर चुका कारण ही पश्चात् कार्यको उपजाता है। " तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वं " इस सूत्रमें महान् नैयायिक माणिक्यनन्दीने उक्त तत्त्वको दरशाया है। " कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेनात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं कारणत्वं " " कार्योत्पादः क्षयो

हेतोः " उपादानस्य उत्तरीभवनात् " (अष्ट स. पत्र १८८) पूर्वेक्षणवर्ती उपादान कारण ही मरकर उपादेय बन जाता है। इस समन्तभद्रीय कारिकाका अन्तस्तल निरखिये। यदि समानकाल वालोंमें कार्यकारणभाव माना जाय, तो गोवत्सके डेरे सीधे, सींगोंमें भी उपादान उपादेय भाव बन बैठेगा। शिवक, छत्र, स्थास, कोष, कुशूल, घट आदि लाखों वर्षतक भविष्यमें होनेवाली उपादेय पर्यायें सब आज ही बन बैठेंगी। " कारणस्य प्राग्भावित्वं, कार्यस्योत्तरकालभावित्वं " (मार्तण्ड पृ. १४७) " अनेकस्मादुत्पद्यमाने कार्ये स्वगतविशेषाधायकत्वं " (मार्तण्ड) यहां उपादानके साथ अनेक सहकारी कारणोंको कार्यजनक पुष्ट किया है। सहभावी और क्रमभावी दोनों प्रकारके कारण माने गये हैं। घटके पहिले, पीछे और समान समयोंमें कुम्हार, दंड, चक्र विद्यमान हैं। यों कुछ निमित्तकारण सहभावी कारण हैं, कुछ निमित्त क्रमभावी कारण हैं, जैसे कि चूल्हेपर रक्खी हुई दाल अग्निसंयोगों करके क्रम क्रमसे पकती है। उपादान कारण क्रमभावी ही होना चाहिये। क्योंकि उपादान ही उपादेय रूप परिणमता है। उपादान, उपादेय दो पर्यायें एक समयमें नहीं ठहर सकती हैं। " पज्जायावट्ठाणं खणमेत्तं होदि णियमेण " (गोम्मटसार)। मार्तण्ड १७२ वें पत्रमें कहा है कि कुछ कारण कार्यदेशमें रहते हैं। और कतिपय निमित्तकारण कार्यदेशसे

अन्यत्र ठहरते हैं। जैसे कि अञ्जन, तिलक, मंत्र, चुम्बक, न्यारे न्यारे देशोंमें हैं, और अंगनाकर्षण आदि कार्य इतर देशोंमें हो रहे हैं। तीर्थङ्करका जन्म नरलोकमें है, और घण्टाशब्द, सिंहनाद ढक्का ढक्कन देव लोकमें हो रहे हैं। " न सर्व कारणं कार्यदेशे सदैव कार्यजन्मनि व्याप्रियते " यों प्रभाचन्द्र आचार्यने आधेसे अधिक मार्तण्ड ग्रन्थमें कार्योंके अनेक कारणोंका निर्णय कर दिया है। सहकारी कारणोंके अनेक प्रकार हैं। जैसे दो भृत्य मिलकर कुएसे पानी खींच रहे हैं, यह स्वतन्त्र सहकारिता है। क्वचित् एक भृत्य घडाको खींच रहा है। दूसरा भृत्य पहिले भृत्यको खींच रहा है, यह शक्त्याधान कारणता है। इसी बातको मार्तण्ड ८४ पत्रमें कहा है कि 'अन्योन्यातिशयाधानात् स्यादेकार्थकारित्वाद्वा तयोः सहकारित्वं" इसी प्रकार अष्ट सहस्रीमें भी कारणोंका निरूपण है। प्रत्येक कार्यमें कारण मानी गयी द्रव्यप्रत्यासत्ति, क्षेत्रप्रत्यासत्ति, कालप्रत्यासत्ति, भावप्रत्यासत्ति चारोंको कारण माना है। उपादानसे उपादेय होनेमें द्रव्यप्रत्यासत्ति अभीष्ट है, अन्य तीन प्रत्यासत्तियां निमित्त समझी जांय। पृष्ठ ११८ " विषयस्य आलम्बन प्रत्ययतया स्वोपादानस्य समनन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषात् " यहां दर्शनका 'अव्यवहित पूर्वपर्यायको उपादान कारण और विषयको अवलम्ब कारण समानरूपसे कहा है।

अष्टसहस्री १२९ पृष्ठ " तत्सहकारित्वेपि किमालम्बनभावेन तत्र तासां व्यापारः अधिपतित्वेन वा " यों ज्ञानके सहकारी कार-

णोंका पुनः अवलम्बन और अधिपति रूपसे प्रभेद किया है। १८४. पृष्ठ " क्रमशोपि कस्यचिदपेक्षितसहकारिणः कार्यसंततिः किं न स्यात् सहकारिणस्तद्धेतुस्वभावमभेदयंतोपि कार्यहेतवः स्युः " यहां एक कार्यमें अनेक सहकारी कारण होते हैं, ऐसा अभीष्ट किया है। अष्टसहस्रीमें कारणोंका और उनके द्वारा कार्योंमें अनेक अतिशयोंके धर देनेका प्रभूत व्यावर्णन है। " तद्धि जानन्ति तद्विदः "।

श्री वर्द्धमान स्वामीके पश्चात् सभी नैयायिकोंके दादा गुरु, गंभीरगरिम श्री समन्तभद्र आचार्य बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रमें कहते हैं:— " अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा। "बहिरन्तरङ्ग निमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते," ।' यद्वस्तु बाह्यं गुणदोष-सूतेर्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः " बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः। " नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां, तेनाभिवन्द्य-स्त्वमृषिर्बुधानाम् "। यहां स्वामीजीने सभी कार्योंमें अन्तरंग बहिरंग अनेक कारणोंकी समग्रताको कार्योत्पादक स्वीकार किया है। एक कारणसे नहीं, किन्तु अनेक कारणकूटसामग्रीसे उत्पन्न हो जाना ऐसा कार्यमें द्रव्यनिष्ठ स्वभाव माना है। पुरुषोंकी मोक्षविधि भी उक्त सामग्रीसे हो रही मानी गयी है। पंडितोंको मोक्ष कर देनेमें बालब्रम्हचारी वासुपूज्य भगवानको प्रधानता दी है। इसी कारण पंडितोंको वासुपूज्यकी वन्दना कर देनेके लिये प्रेरित

किया गया है। " यथैकशः कारकमर्थसिद्धये, समीक्ष्य शेषं स्वस-हायकारकं " एक कारक अपने अनेक सहकारी कारणोंकी सहा-यता पाकर कार्यको साधता है।

" बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति " ।

यों श्री समन्तभद्राचार्यने अनेक कारणोंका प्रतिपादन किया है। परस्परापेक्ष अनेक कारणोंसे कार्य बनता है।

श्लोकवार्तिक २८ वें पृष्ठमें " वृश्चिकशरीरारम्भका पुद्गला स्तदुपादानं " ३० वें पृष्ठमें " सामग्रीजनिका नैकं कारणं किंचि-दीक्ष्यते " ७० वें पृष्ठमें " स्वसामग्र्या विना कार्यं नहि जातु-चिदीक्ष्यते " ७१ वें पृष्ठमें " मोहक्षयो नायोगकेवलिगुणस्या-नोपान्त्यसमयं सहकारिणमन्तरेण तमुपजनयति " यो विद्यानन्द स्वामीने अनेक स्थलोंपर (श्लोकवार्तिकमें) अनेक कारणोंका समुदायरूप सामग्रीको एक कार्यका जनक निर्णीत किया है।

चार्वाक, बौद्ध, वैशेषिक, नैयायिक, वैयाकरण, मीमांसक, वेदान्त वादियोंने भी कार्यके अनेक कारण माने हैं। चार्वाक कहते हैं कि " पृथिव्यप्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तेभ्यः शरीरेन्द्रिय-विषयसंज्ञास्तेभ्यश्चैतन्यं " पृथ्वी, जल, तेजः, वायु, इन निमित्तोंसे चैतन्य उपज जाता है। शब्द, बिजली, प्रदीप जैसे उपादानके विना निमित्तोंसे ही उत्पन्न हो जाते हैं। तद्वत् पृथ्वी

आदिसे चैतन्य बन बैठता है। आचार्योंने इसका खण्डन किया है कि बिना उपादानके कोई उपज नहीं सकता है। शब्द, बिजली आदिके भी समवायिकारण हैं। तुमको नहीं दीखें उसका हम क्या करें? चिकित्सा कराओ।

बौद्धोंने प्रत्येक कार्यकी उत्पत्तिमें समवायिकारण, निमित्त कारण माने हैं। उत्पाद सहेतुक है विनाश निर्हेतुक है। समनन्तरप्रत्यय और प्रयोजक कारणोंसे कार्य उपजता है। वैशेषिक नैयायिकोंने भी:—

अन्यथासिद्धिशून्यस्य, नियता पूर्ववर्तिता।
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम्॥
समवायिकारणत्वं ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम्।
एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीयमुक्तं निमित्तहेतुत्वम्॥

यों कार्यनियतपूर्ववर्ती तीन कारण माने हैं। निमित्त कारणोंके अनेक भेद हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणका उपजानेमें आत्मा, आत्ममनःसंयोग, इन्द्रियार्थसन्निकर्ष, आलोक, उद्भूतरूप, महत्त्वावच्छिन्न यों अनेक कारण हैं। अनुमान प्रमाणको बनानेमें हेतुज्ञान व्याप्तिस्मरण, पक्षधर्मताज्ञान, आत्मा, अन्तःकरण संयोग, प्रयोजक हैं। शब्दबोध करनेमें आसत्ति, योग्यता, आकांक्षा, तात्पर्यको निमित्त माना गया है। हेतुओंके कारक, ज्ञापक, व्यञ्जक,

अभिप्रायक, लक्षक आदि अनेक भेद हैं। अग्निका ज्ञापक हेतु
धूम है, धूमका कारक हेतु अग्नि है, समवायिकरण पोंगा गधेपर
लदकर मिट्टी रूपमें जड भरा पडा हुआ है, निमित्त कारण कुम्हार
की इच्छासे मिट्टी पिटती, खुंदती, गूंदी जाती है, चाकपर नाचती
रहती है, आगमें जला दी जाती है, धेले धेलेमें टुकती, बिकती
फिरती है। वैयाकरणोंने कार्यके छह कारक माने हैं, एक एक
के कई प्रभेद हैं। णिजन्त प्रयोजक, हेतुकर्त्ता, हेतुहेतुमद्भाव
तटस्थ निमित्त, क्रियातिपत्ति आदि कारण माने हैं। वर्णस्फोट,
पदस्फोट, वाक्यस्फोटको वाच्यार्थप्रतिपत्तिमें निमित्त कहा है।
"स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत" यहां स्वर्ग और यागस्थ अनेक
कर्मोंका निमित्तनैमित्तिक भाव स्वीकृत किया है। आत्माद्वैतवादी
भी श्रवण, मनन, निदध्यासन, इन निमित्तोंसे आत्मदर्शन हो
जाना अभीष्ट करते हैं। रामानुज सम्प्रदायक या विशिष्टाद्वैत,
ज्ञानाद्वैतवादी भी अनेक कारणोंसे अपने अभिप्रेत तत्त्वोंकी प्राप्ति
होना मानते हैं। निमित्तको कार्यकारी माने विना जिनदर्शन,
पूजन, स्वाध्याय, गुरूपासना, दान ये सब धर्म्यक्रियायें व्यर्थ हैं।
तीर्थयात्रामें क्षेत्र या जिनचरण वीतराग भावोंके निमित्त ही तो
हैं। केवली या श्रुतकेवलीके निकट ही मनुष्य तीर्थङ्कर प्रकृतिके
बंधका प्रारंभ करता है। इसी प्रकार सात प्रकृतियोंका क्षय प्रारंभ
भी कर्मभूमिका मानव केवलिमूलमें करता है। इसपर कोई
आत्मवादी आक्षेप उठा देता है कि सकडोंबार केवलिद्वयका सन्नि-

धान हो चुका है, फिर तीर्थङ्कर कर्म क्यों नहीं बंधा ? इसका उत्तर दिया जा चुका है कि एक कारणसे ही कार्य नहीं हो जाता है, अनेक कारणोंकी समुदायरूप सामग्रीसे कार्य हो जाने का नियम है। प्रतिबन्धकाभावविशिष्ट अन्त्या कारणसामग्रीको जैनसिद्धान्तमें कार्यजनक माना है। श्री माणिक्यनन्दीने परीक्षा मुखमें लिखा है। " रसादेकसामग्र्यनुमाने रूपानुमानमिच्छद्भि-रिष्टमेव किंचित् कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरा-वैकल्ये " कारणोंकी सामर्थ्यका प्रतिबन्ध नहीं होना, और अन्य सभी कारणोंका पूर्ण रूपेण जुट जाना, ऐसी अवस्थामें कार्य अवश्य बन बैठेगा। हम आत्मवादियोंसे ही पूंछते हैं कि आपका आत्मा उपादन अनादिसे सदा विद्यमान है, फिर सम्यग्दर्शन, क्षपकश्रेणी, क्यों नहीं बन बैठते हैं ? इसके उत्तरमें उनको भी अन्य कारणोंकी शरण लेनी पडेगी। हमें तो इस समय उपादानके अतिरिक्त कारणोंकी सामर्थ्यका शास्त्रोक्त निरूपण करना है। मरते समय नरक आयु, नरक गति कर्मका उदय आ जानेपर बलात्कारसे जीवको पराधीन नरक जाना पडता है। तिर्यगायु:की उदयावस्थामें घोडी, कुतिया, मुर्गीके, पेटमें जन्म लेना पडता है। कैदीके समान वहां ही रुका रहना पडेगा। संसार कोई हूंसी खेल नहीं है कि कोरे ज्ञानसे उडा दो। बडा भारी कार्य क्षेत्र है। मुक्त जीवोंकी अपेक्षा संसारी जीवोंका कार्यकारणभाव अनंत गुण अत्यधिक है। पराधीनता छक्के उडाये देती है। " स्वकर्म-

सूत्रग्रथितो हि जीवः ” । हम आप अभी मोक्षको क्यों नहीं चले जाते हैं ? उपादान आत्मा तो मोक्षके लिये उद्युक्त बैठा है । परम वीतराग आत्मवेत्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य, समन्तभद्राचार्य, नेमिचंद्र, भगवान् पूज्यपाद, गुणभद्र आचार्य सभी मुनि महाराज स्वर्गोंमें ही लौकिक आनन्द ले रहे हैं । स्यात् कोई ब्रम्हचारी लौकान्तिक देव हो गये होंय, बहुभाग मुनिराज तो अनेक स्त्रियोंमें राग क्रीडा कर रहे होंगे “ अन्तर रसमें गटागटी ”। सुधर्मा सभामें दिनरात तबला ठनठनता रहता है, करोडों बाजे बजते रहते हैं, लाखों अप्सरायें नाचती रहती हैं । सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र पांच इन्द्रियोंके भोग भोगते हैं । प्रसंगवश मुझे छोटे मुंह बडी बात कहनी पडी, इसका मुझे अनुताप है । मेरा उपादान आत्मा भीतरसे नहीं चाहता था कि परमपूज्य आचार्योंकी व्यक्तिगत चर्यापर कुछ कहूं, किन्तु आप लोगोंके अनुरोधवश मेरे मुखसे बलात् अविनीत वचन निकल गये हैं । उसका प्रतिक्रमण करता हूं । “ तेभ्य आचार्येभ्यो नमः”। प्रतिक्रमण निमित्तसे आत्मामें शांति प्राप्त होगी दुष्कर्मबन्ध हलका पड जायगा । कहना यही है कि केवल उपादान आत्मासे ही मोक्ष नहीं मिल जाती है । किन्तु योग्य देश, काल, क्षपकश्रेणीके भाव, वज्रवृषभनाराचसंहनन, चरमशरीरी आत्मद्रव्य, महाव्रतधारण आदि अनेक कारणोंसे मोक्ष हो सकती है । इन निमित्त कारणोंके विना कोरा आत्मा चित्रसिंहवत् अकर्मण्य है ।

रत्तीके सौवें भाग तोलका वटबीज ५० वर्षमें ५०० मनके वट वृक्षको उपजा देता है। यह छोटासा वट बीज बड़े वृक्षका उपादान तो नहीं है, मात्र निमित्तकारण है। वृक्षके उपादान तो मिट्टी, खाद, वायु, आदि हैं, जिनको कि बीज खींच लेता है। यों निमित्तने उपादानको खींच लिया। सरसों बराबर रजो वीर्यसे आद्य मानवशरीर उपजा, पुनः आहार वर्गणा खाद्यका आकर्षण कर स्थूलशरीर बनता रहता है। न्यायशास्त्रोंमें बीजका अर्थ निमित्तकारण कहा है। मन, वचन कायके परिस्पन्दरूप योगका निमित्त पाकर उपादानकारण आहारवर्गणायें, भाषा वर्गणायें खींची चली आती हैं। " देहोदयेण सहिदो• जीवो आहरादि कम्मणोकम्मं, पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्वजलं" " समयपबद्धं बन्धदि " " मोहस्स बलेण घाददे जीवं, थीणुदये णुट्ठविदो सोवदि " (गोम्मटसार) इन गाथाओंमें कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीव अनेक क्रियाओंका कर्त्ता बताया है। स्त्यानगृद्धि कर्मका उदय होनेपर जीव उठाया हुआ भी सो जाता है, अनेक कुचेष्टायें करता है। निमित्तों अनुसार संसारी जीव ही मांस, रक्त, वीर्य, मज्जाको बनाता है, केवल पुद्गल या कोई यन्त्र इस हड्डी या मांसको नहीं बना पाता है। इसी प्रकार चांदी, सोना, रत्न, फूल, फल, रस, औषधियोंको यह एकेन्द्रिय जीव ही बनाता है, ईश्वर या वैमाता नहीं।

हिंसक, चोर, परस्त्रीगामी, कुज्ञानी, मिथ्याज्ञानी, रागी, द्वेषी, दुःखी, सुखी यह जीव ही है। जड़ पुद्गल नहीं।

समयसारमें भी ८४, ८८, ८९, ९१, ९२, ९४, १६२, १६३, १६४, १६५, २८१, २८२ संख्याओंकी गाथाओंमें मिलता जुलता ऐसा ही प्रतिपादन है। सभी तो संसारी जीवके उक्त कारणोंसे कर्मोंका बन्ध होता रहता है। 'जीवो कम्मं बन्धदि'। पानी पीनेसे प्यास बुझ जाती है, दाल रोटीसे भूख मिट जाती है, औषधिसे रोग चला जाता है, सौड़से जाड़ा चला जाता है, यहांसे वायुयान या रेलगाड़ीमें बैठकर यह जीव २० घंटेमें कलकत्ते पहुंच जाता है, यदि शरीरी जीव पांवोंसे चलता तो दो, तीन महिनेमें पहुंचता। यह कार्यकारणभाव कोई कल्पित या झूंठा नहीं है। जगत्में नहीं जाने किस किस निमित्तसे अद्भुत नैमित्तिक कार्य बन रहे हैं। मकरी, चिरैया, गटगाढिया सैकड़ों मक्खियोंको खा जाती हैं, वमन नहीं होता। उल्टी वपुःपुष्टि होती है, किन्तु मनुष्य यदि मक्खीको खा जाय तो वमन हो जाता है। मानव शरीरधारी आत्माको स्त्रीरमणके भाव उपजते हैं, और स्त्रीशरीरधारी आत्माके पुरुषके साथ रमण करनेके भाव जगते हैं। हाथी या राजाके बच्चेको भी रेतमें खेलना प्रिय लगता है। व्याघ्र, सिंह, छपकली, नीलकण्ठ, वृक (भेड़िया) के शरीरकी आत्माको मांसभक्षणसे रुचि और घासपत्तीसे अरुचि

रहती है, जब कि बकरी और गायकी आत्मा मांससे घृणा, पत्ता, घाससे अभिरुचि रखती है। यों गृहीत पर्यायोंके परवश आत्माको वैसा नाचना पडता है।

जड कर्मोका उदय आ जानेपर अज्ञान, नींद, सुख, दुःख, असाता स्त्री हो जाना, पुरुष बन जाना, नारकी हो जाना, मिथ्यात्व, क्रोध, मान, पीटना पिटना, ऊंच, नींच, अलाभ आदि पराधीन अवस्थायें द्रव्यनिमित्तक हो जाती हैं। क्षेत्रनिमित्तक नरकमें परको पीडा पहुंचानेके विचार होते रहते हैं। तीर्थस्थान, मंदिरजी, बाजार नाटकगृह आदिमें शुभ अशुभ भाव होते रहते हैं। ढाई द्वीपके बाहर भोगभूमियोंसे मोक्ष नहीं हो पाती है। कालमें व्यवहार काल अनुसार अमुक वनस्पति नियत कालमें फलती फूलती है। शीतऋतु, उष्ण ऋतु, वात्या आदि कार्य व्यवहार कालके अधीन हैं। " दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो " (द्रव्यसंग्रह)। जीव या पुद्गलद्रव्योंका भूमिमें, वायुमें खेतमें अनेक परिवर्तन हो जाना स्वरूप व्यवहारकाल है। उस व्यवहार कालके अनुसार वैभाविकशक्तिधारी जीव पुद्गलोंको नाचना पडता है। द्रव्यपर्यायानुसार एकेन्द्रिय, विकलत्रय जीवोंके सम्यग्दर्शन नहीं हो पाता है। वज्रवृषभनाराचसंहनन विना मोक्ष या सातवा नरक नहीं हो पाते हैं। सातवें नरकसे आकर तिर्यञ्च ही होगा। सातवें नरकमें कुछ अन्तर्मुहूर्त कमती

तेतीस सागरतक सम्यग्दृष्टि बना रह सकता है, किन्तु वहांसे निकलकर कर्मभूमिका तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि ही बना रहेगा, इसी प्रकार आत्मा यदि परिहार विशुद्धि संयम लेवे तो प्रथम तीस वर्षतक न्यायपूर्वक भोग भोग लेना आवश्यक है।

गाय, भैंसके, पेटमें भुस, घासका दूध बन जाता है, बैल या गधाके पेटमें नहीं। एक औषधि अनुपान भेदसे अनेक रोगोंको दूर कर देती है। ककडीके भयबलपर बंदरी नाचती है। बाजेके अनुसार नर्तकका पांव और ढुलकिया या नगाडचीका सिर हिलते हैं। बाजे या गानेके शब्दसे मृग आकर्षित हो जाते हैं। दीपकपर पतंग खिंच आते हैं। जगत्में आत्मसंबन्धी कार्योंसे करोडों असंख्य गुने कार्य विचारे पुद्गलके ही उपादान, निमित्त भावसे बन रहे हैं। जीवोंसे अनन्तानन्तगुणे बादर या सूक्ष्म पुद्गल निठल्ले नहीं बैठे हैं, अर्थक्रियाओंका क्षेत्र बहुत बडा हुआ है। उनमें आत्माको कोई पूंछता नहीं। आत्माके कहे गये कार्योंमें भी पुद्गलका बहुत बडा योग है। निमित्तोंके अनेक प्रकार हैं। किसी किसी निमित्तके दूर हो जानेपर नैमित्तिक कार्य भी नष्ट हो जाता है। जैसे ढोलकमें जबतक हस्तका आघात होता रहेगा या बांसुरीमें मुखवायुका प्रवेश रहेगा बजती रहेगी, अन्यथा नहीं। "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यभावः"। तथा क्वचित् निमित्तके दूर हो जानेपर भी नैमित्तिक कार्य नहीं मिटता है। जैसे कि

अग्नि संयोगके नष्ट हो जानेपर भी ईंट लाल, पक्की, बनी रहती है। कारीगरके देशान्तरगमन या मृत्यु हो जानेपर भूषण, वस्त्र हवेलियां तदाकृति बने रहते हैं। यों निमित्त कारणोंका कार्योंमें प्रयोजकत्व प्रमाणसिद्ध है। गजरथ या घोडागाडी हाथी या घोडेके चलनेपर ही चलते हैं। मोटरकार पैट्रोल रहनेतक ही चलेगी, तेल निबट जानेपर नहीं चल सकती, यों हाथी, घोडा, तेल ये प्रेरक निमित्त हैं। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धको यदि तोड दिया जाता तो संसार बन्धन ही कभीका नष्ट हो चुका होता। या तो शून्यवाद छा जाता या कूटस्थ आत्मायें ही पायी जातीं, सब अनादि सिद्ध हो चुके होते। सम्मेदशिखरकी भावपूर्ण वन्दना कर लेनेसे नरकायु, तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है। "दर्शनं पापनाशनं, जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि," संसारतापविनाशनाय चन्दनं, ये कोरे स्तुतिवाद नहीं हैं, परमार्थ हैं। जिनेन्द्रदर्शन, पूजनसे मात्र पुण्यबन्ध ही होता है, इतना ही नहीं समक्ष बैठना, सम्वर निर्जरा भी होते हैं। यदि समर्थ कारण है, तो कार्य अवश्य बन बैठेगा। द्रष्टा और अर्चकके एकदेशरूपसे गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और व्रत तथा कुछ अंशोंमें इच्छानिरोध होते रहनेसे सम्वर निर्जरा होते रहते हैं। तभी तो सम्यग्दृष्टिके इकतालीस प्रकृतियोंका सम्वर माना गया है। अन्य भी तीव्र रसवाली पाप प्रकृतियोंका

संवर होता रहता है। साथ ही सम्यग्दृष्टिके निर्जरा असंख्यात गुणी होती रहती है।

" सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजक " इस सूत्र द्वारा दश स्थानोंमें असंख्यात गुणी निर्जरा बतायी है। सातिशय मिथ्यादृष्टिके अपूर्वकरण भावोंसे चौथे गुणस्थानवर्तीकी निर्जरा अधिक है। सम्यग्दृष्टिसे देवदर्शन, पूजन, तीर्थयात्रा, गुरूपासना स्तोत्रपाठ, मुनिदान, कर रहे श्रावककी कर्मनिर्जरा असंख्यात गुणी है। प्रत्येक धार्मिक क्रियामें प्रवृत्ति, निवृत्ति अंश होते हैं। निवृत्तिअंशोंमें पुण्य, पापका संवर होता है। प्रवृत्ति भावोंसे पुण्यबन्ध हो जाता है। श्री समन्तभद्र, मानतुंग आदि आचार्योंने जिनेन्द्र श्रद्धा भक्तिको ही सम्यग्दर्शनका प्रधान कारण माना है। स्तोत्रोंमें कहा " त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं, त्वत्सं-कथापि जगतां दुरितानि हंति " " उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि " " अपराजितमन्त्रोयं सर्वविघ्नविनाशनं " " त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल " इत्यादि कार्यकारणभाव झूंठा नहीं है। जिस कारणसे जो कार्य हो रहा दीखता है, कौन प्रामाणिक पुरुष उसका दृष्टापलाप कर सकता है ? यदि किसी अतिशय क्षेत्रमें जिनबिम्ब दर्शनसे जैनजन लौकिक इष्टसिद्धि कर लेते हैं, तो आप उस कार्यकारण भावका निषेध नहीं कर सकते हैं। अष्ट-शतीमें श्री अकलंक देवने इस तत्त्वका अनेक युक्तियोंसे समर्थन

किया है। विषमें मार देने, जिला देनेकी दोनों पूर्ण शक्तियां हैं। यदि नरकपालमें तत्कालीन वर्षाके भरे हुये जलको भयङ्कर काला सर्प पी जाय तो उस शेष विष जलको पी लेनेसे उदुम्बर कुष्ट रोग दूर हो जाता है, इसमें आपकी क्या क्षति पडती है? हमें दार्शनिकोंको आपके नफा, टोटेका कोई लक्ष्य भी नहीं है। विद्यानन्द स्वामीने उक्त रहस्यका अष्टसहस्रीमें खूब स्पष्टीकरण किया है। " विषद्रव्यस्य मारणशक्तौ वेद्यायामपि कुष्टापहरणशक्तेरवेदनात् "। उपभोक्ता मानव इन हलुआ, पेडा, पान, गूझा, पूडी, कचौडी, दीवली, सकलपारे, चना, मका, आदिको न्यारी न्यारी शक्तियोंको लगाकर दान्तोंसे विभिन्न प्रकार दवोचता हुआ खाता है।

निमित्त कारणोंकी अचिन्त्य अनिर्वचनीय प्रक्रियाओंका निरूपण अशक्य है। इलेक्ट्रिक होमियापैथिक चिकित्सा पद्धतिमें दस पानीके भरे गिलासोंमें एक एक चम्मच उत्तरोत्तर दवाका पानी डाल देनेपर शक्तियां बढती चली जाती हैं, जब कि प्रथम गिलासमें एक तोला बूरा डालनेसे उत्तरोत्तर ९ गिलासोंमें चम्मच द्वारा मिलाते हुए मीठापन कम होता चला जाता है। रुडकी नहरका पुल जबसे बना है तभी बीसों वर्षोंसे चुचाता है। चुचाती हुई इमारत शीघ्र गिर जाती है। किन्तु पुल निर्माताका कहना है कि जबतक पुलमेंसे पानी टपकता रहेगा, तबतक ही पुल दृढ बना रहेगा। और जिस दिन पानी टपकना बन्द हो जावेगा, उसी दिन पुल

टूट जावेगा। यह निमित्तकी विलक्षणता है। जैसे गाय, भैंस, बकरी दुई जाती हैं, वैसे सूहरी नहीं है। सूहरीको उसका बच्चा ही दुह सकता है। कोई यन्त्र या नट नहीं। और भी सुनिये:—

यह लखि निज दुःख गदहरण काज।
तुम ही निमित्तकारण इलाज॥

महाविद्वान् पण्डित दौलतरामजीका यह कथन अत्यधिक सार को लिये हुए है। "निमित्तकारणेभ्यः, पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः" "तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षिति-तलामलभूषणाय" ये कार्यकारणभाव सत्यार्थ हैं। कारणोंकी शक्तिका गम्भीर गवेषण कीजिये। बेर या बबूलोंके काटोंको कौन पैनाता रहता है? नीबमें, आममें, कौन कडुवेपन, मीठेपनका इञ्जैक्शन कर देता है? विद्वान्‌जी! इन सब असंख्य कार्योंके न्यारे न्यारे अनन्तानन्त कारण विद्यमान हैं। जैसे ईश्वरवादी कह देते हैं कि ईश्वरकी इच्छा विना एक पत्ता भी नहीं हिलता है। उससे भी लाखों गुना अन्तःप्रवेश कर जैन न्यायशास्त्र पुष्ट कर रहे हैं कि भिन्न भिन्न कारणोंसे ही न्यारे न्यारे कार्य बनते हैं। एक पत्तेकी सैकड़ों नसोंके भी अलग अलग कारण हैं। कारण-भेद विना कार्यभेद हो ही नहीं सकता है। "अनाधेयाप्रहेया-तिशयानाम् कारणत्वासम्भवात्" (मार्तण्ड)। जो पदार्थ अति-शयोंको लेते, देते नहीं वे कारण नहीं हो सकते हैं। अग्निसे

लग जानेपर अंगुली मुरस जाती है, साथ ही अंगुलीके संयोगसे अग्निकी उष्णता न्यून हो जाती हैं। कुम्हार मिट्टीकी गोल, टेढी पतली, मोटी आकृति कर देता है, मिट्टी भी कुम्हारके हाथ पांव को रगड देती हैं। ठेकें पड़ जाती हैं। मल्हम फोडामेंसे दोषोंको निकाल फेंकती है, चमडेमें अंकुर पूरती हैं। फोडा भी मल्हमको निःशक्तिक कर देता है, पहिलीसी उष्णता, सुन्दरता नहीं रहती है। खाद्य पदार्थोंसे उदराग्नि मन्द पड जाती है, इधर उदराग्नि भी अन्नको मसलकर चकनाचूर कर देती है, मलाशयमें पहुंचा देती है। चाकू कलमको बना देता है, चीर फाडकर देता है, कलम भी चाकू को भोथरा कर देती है। जलसे स्नान करनेपर जल मलको फटकार कर बाहर निकाल देता है। जलके अवलम्बसे शरीरमें अनेक क्रियायें होती हैं, शरीरमें स्फूर्ति आती है। जल भी शरीरसम्बन्धसे उष्ण हो जाता है, जलकी कान्तिजनकता मर जाती है। शरीर उसके शीत अंशोंको खींच लेता है, स्वाद मारा जाता है, जलका कुछ भाग नष्ट हो जाता है, और जल भी शरीरकी उष्णताको पकड लेता है। यों कारणोंमें अतिशयोंका आदान प्रदान होता रहता है। चमत्कारों या शक्तियोंका लेना देना अनेक अवस्थायें बदलना ऐसे विपरिणाम सभी उपादान या निमित्तोंमें होते रहते हैं। तभी वस्तुका परिणाम या अर्थक्रियाकारित्व लक्षण घटित होता है। क्रियात्मक या अक्रियात्मक व्यापार किये विना कारकपना नहीं बनेगा। अकलंक देवने अष्टशतीमें

इस विपरिणामवादका भारी समर्थन किया है । कोई भी वस्तु ठलुआ नहीं बैठी रहती है । कारणोंके सन्निधान हो जानेपर परस्परमें क्रांति मच जाती है, तब वे कार्यको करके ही चैन लेते हैं । फिर अन्य कार्योंको करनेमें जुट पडते हैं । इसी सन्तान प्रतिसन्तान चेष्टाप्रवाहमें कार्यकारणभाव अपने अनादि अनन्त कालको पूरा करता है । वस्तु अर्थक्रियाकारी है, परिणामी है, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, करती रहती है । चून्हेपर कढेडीमें आग्निके निमित्तसे हुई दालकी प्रलयकारी क्रांतियोंको आप आखोंसे देख रहे हैं । कुल्हाडीसे चीपुटीकी चीर चीर उड जानेको निरख रहे हैं । इसी प्रकार सूर्यसे खेतोंमें अन्नपाक, चन्द्रमामें औषधियोंमें शक्त्याधान, भी बडे ठाटोंसे होता रहता है । भूमिमें कैसे कैसे विलक्षण गदर होते रहते हैं, तब कहीं ज्वालामुखी, पहाडोंका फटना, भूकम्प, ऋतुपरिवर्तन, भिन्न भिन्न समयोंमें न्यारी न्यारी वनस्पतियोंका फलना, फूलना, खानोंमें हीरा, पन्ना, सोना, चांदी आदिका उत्पादन ये कार्य हो पाते हैं । आप तो गाढनिद्रामें बेहोश सो जाते हैं, किन्तु शरीरमें, ठंडाई, रोटी, घीके कैसे कैसे न्यारे परिणाम होते हैं, तब रक्त, मास, चर्म, रोम, वीर्य, आदि बन पाते हैं । काली मिरचके पारिणामिकभाव इंद्रिय पर्याप्ति द्वारा बनकर आंखोंमें भेज दिये जाते हैं, बादामको शरीरपर्याप्ति द्वारा रासायनिक प्रक्रियासे मस्तिष्कमें अनुप्रविष्ट कर दिया जाता है । इसी

प्रकार सबको रक्त, दूधका मांस बनाकर शरीर पेशियां पुष्ट कर दी जाती हैं। आपको कोई पता नहीं कहां क्या हो रहा है। राजयक्ष्मा रोग शरीरकी हड्डियोंमें लाखों छेद कर देता है, फेफडेको बेवर सदृश छिद्रान्वित बना देता है। संग्रहणी सातों धातुओंका पतला मल बना देती है। मधुमेह रोग पूरे शरीरको शक्कर बनाकर मार डालता है। कासश्वास, शरीरका कफ बना डालता है। विना चाहे, प्रयत्न विना, कंपवायु हाथोंको कपाती रहती है। यों कारणों द्वारा कार्य हो जानेकी अनेक पारिणामिक विचित्रतायें हैं। रोटीको बनाने पकानेमें सूप, चक्की, पानी, चकला, आग, तवा, चीमटा, सभी निमित्तकारण हैं। सूप, गेंहुओंको फटक देता है, चक्की आटा पीस देती है। जल माड देता है, चकला वेलन लोईको वेल देते हैं, तवापर आग सेक देती है, गरम रोटीको चीमटा आगमें लुढकाता पकडे रहता है। फिर थालीमें परसके कौर तोडा जाता है, मुखमें दिया जाता है, चबाया जाता है। लार मिलाई जाती है, कौआको ऊंचा करके पेटमें ढकेल दिया जाता है, वहां भी अन्नकी अनेक नैमित्तिक रसायन प्रक्रियायें बदलती हैं, तब कहीं रक्त, मांस, मज्जा आदि बनते हैं। यों जगत्में निमित्तोंका साम्राज्य है। सम्राट्, वायसराय, प्रधान मंत्री, प्रान्तीय मंत्री, कलेक्टर, तहसीलदार, सिपाही इन सब निमित्तों अनुसार

आत्मवादी सर्वत्र आत्ममहिमाके गीत गाते हैं। उनको न्यायशास्त्र और सिद्धान्त आगमकी अपेक्षा रखना आवश्यक है। जैसे थालीमें घृत या सर्पतैल फैलाकर दीपक उजाला जाता है, वैसा मिट्टीका तेल या पैट्रोलसे दिया नहीं उजाला जाता। हां, कथन प्रक्रिया प्रयोजनवश न्यारी कहलो। रूपवान् बालक है, पुष्प सुगन्धी है, आम रसीला है, वस्त्र नरम है। यों एक ही गुणपर लक्ष्य देनेसे सभी पुद्गलोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों युगपत् विद्यमान हैं, इस सिद्धान्तसे विरोध ठन जायगा। हां, किसीकी मुख्य विवक्षा होनेपर वैसा एक गुणवाला थोड़ी देरके लिये कह सकते हो।

संसारी हमारी आपकी आत्मा बद्ध है, अशुद्ध है, असिद्ध है, मूर्त है, साञ्जन है। फिर उसको अबद्ध, अमूर्त, शुद्ध, निरञ्जन कहते रहना सम्यग्ज्ञान नहीं, मम्हाद्वैतवाद है। जिसका

कि श्री समन्तभद्राचार्यने देवागममें " अद्वैतेकान्तपक्षेपि दृष्टो भेदो विरुध्यते, कारकाणां क्रियायश्च नैकं स्वस्मात् प्रजायते "।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं, लोकद्वैतं च नो भवेत्, ।
विद्याविद्याद्वयं न स्याद् बंधमोक्षद्वयं तथा ॥

यों अद्वैत वादका सर्वाङ्ग खण्डन कर दिया है। न्यारिया खोटे सोनेको शुद्ध सुवर्ण नहीं मानता है। उसमें मिले हुए अन्य-धातुओंको न्यारा समझ शुद्ध सोनेको आंक लेता है। पुनः प्रयोगों से सोना शुद्ध किया जाता है। कमती बढती अन्दाज लगा लेना शुद्धशातकुम्भज्ञान नहीं माना जाय। शक्ति और व्यक्तिमें महान् अन्तर है। हमारे पास सौ रुपयेका नोट है, बाजारमें हम उससे गेहूं, बाजरा, घी, कपड़ा, घड़ी, चांदी, ईंट, पत्थर कुछ भी मोल ले सकते हैं। एतावता उस नोटमें या नोटवाली जेबमें गेंहूं घी आदि व्यक्ति रूपसे धरे नहीं कहे जा सकते हैं, बस इतना " शक्ति रूपसे हैं। " इस वाक्यका तात्पर्य है। श्रेणिक अवस्थामें महापद्म सिद्धपना कथमपि नहीं है। दूध, सर्पके मुखमें विष बन जायगा, किन्तु दूध अवस्थामें विष बिल्कुल नहीं है। यद्यपि आत्मवादीकी चर्चा जैनोंमें कुछ प्राचीन समयसे चली आ रही है। होशंगाबाद, ललितपुर, आदि स्थानोंमें इनके स्वतंत्र मंदिर हैं। मंदिरोंमें जिनबिम्ब विराजमान नहीं हैं। केवल शास्त्र रक्खे हुए हैं। ये देवपूजा, तीर्थयात्रा, अभिषेक, पञ्चकल्याणक,

प्रतिष्ठायें आदि प्रपंचोंमें नहीं पडते हैं। समयसारकी विशेषरीत्या उपासना करनेसे इनको समैया कहा जाता है। किन्तु सौ वर्षोंसे इनका प्रचार कम हो गया है। कारंजाके वृद्ध भट्टारकजी और अमरावतीके कतिपय भाइयोंने पचास, साठ वर्ष प्रथम आत्मवादको उखाडा, किन्तु वह अधिक नहीं फैल सका। अब पन्द्रह वर्षसे पुनः गुजर देशसे प्रचारप्रवृत्ति बढ रही दीखती है। अनुमित होता है कि ये आत्माके ही गीत गानेवाले अभी नया हैं, आगे तो ये और भी शुद्धात्माद्वैतपर सरकेंगे। इनके लेख इस बातके पोषक हैं कि दस वर्ष प्रथम ये निमित्तोंको कार्यकर्त्ता,प्रेरक स्वीकार करते थे, अब ये, उपादान ही निमित्तको खींच लेता है, कहते कहते यों कहने लगे कि निमित्त कुछ करता ही नहीं है, आत्मा ही सब कुछ कर लेता है। निकट भविष्यमें ये निमित्तको उपादानकी पर्याय या भ्रान्तिरूप ही कहने लगेंगे, देखते जाओ। अभी कुछ द्वैतको मानते हुए विशिष्टाद्वैतपर पहुंचेंगे, फिर शुद्धाद्वैतपर जाकर ठहरेंगे, ऐसे ही विकासके ढंग दीख रहे हैं। शङ्कराचार्यका वेदान्त भी इसी प्रकार फूला फला था।

षड्दर्शनकारोंने भी वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा आदि भेदवादोंमेंसे गुजरते हुए अन्तमें वेदान्तकी शरण पकडी है। षोडश पदार्थोंको मान रहे भेदवादी गौतमने अपने मतका खण्डन करनेवाले वेदांतदर्शनस्रष्टा अभेदवादी व्यास

जोके अपनी आखोंसे दर्शन नहीं करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी।। किन्तु अन्तमें गौतमको ब्रम्हाद्वैत मत अच्छा लगा तो गौतमजीने तपोबलसे अपने दोनों पावोंमें आखें बनाई। उन आखोंसे व्यास मुनिके दर्शन किये। (अक्षिणी पादयोः सोक्षपादः, ऐसा व्याप्रिकण बहुब्रीहि समास है)। यों नैयायिकोंकी किम्बदन्ती धारणा है। वेदान्तियोंने ईश, केन, तैत्तिरि कठ आदि दस उपनिषदोंमें इनसे भी अधिक आत्माको ही विश्वस्वरूप मानकर पुनः अखिल जगत्को भ्रान्ति, माया, स्वप्न, ठहराया है। "ब्रम्हैव सत्यमखिलं न हि किञ्चिदस्ति, सर्वं वै खल्विद ब्रम्ह" आरामं तस्य पश्यंति न तं पश्यति कश्चन, "एकं ब्रम्ह द्वितीयो नास्ति, "तत्वमसि," यों संसारी मुक्त, शुद्ध अशुद्ध, अनन्त आत्मायें और अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य ये भेद ही तोड दिये जायेंगे। एक व्यापक शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, आत्मतत्वपर दृष्टि रुकेगी। विनोदार्थ एक पद्य सुनिये एक अभिसारिका स्त्रीने अपनी सखीसे कहा कि:—

ब्रम्हैव सत्यमखिलं नहि किंचिदस्ति।
तस्मान्न मे सखि परापरभेददृष्टिः ।। (बुद्धिः)
जारे तथा निजपतौ सदृशोनुरागो।
व्यर्थं किमर्थमसतीति कदर्थयन्ति।।

व्यभिचारिणी अपनी सहेलीसे कहती है कि हे मित्रे! जब सर्वत्र एक ही ब्रह्म फैला हुआ है, तो मैं भी स्वपति और जारमें

अभेद बुद्धि रखती हूं। दोनोंमें मेरा समान अनुराग है, पुनः जनता मुझे व्यर्थ ही असती कहकर क्यों निन्दित करती है ! क्या ब्रम्हाद्वैतपर श्रद्धा न्यून हो चली है ! जिनागममें उक्त मान्यताओंको प्रथम गुणस्थानका दर्जा दिया गया है। और अधिक क्या कहा जाय ! संभव है, अन्य मतोंके सदृश इससे भी आगे दृष्टि रुके तब तत्त्वोपप्लव या शून्यवादपर ही सन्तोष जमेगा। काणाद गौतमीय, कापिल, पातंजल, भाट्ट, आदि दार्शनिकोंने भी बडे क्रिया काण्ड कर कराकर पुनः वेदान्तको अपनाया है। बनारस बंगालके, पंडोतोंकी यह सरणी है। वेदान्तमें कुछ लौकिक आनंद भी है। यम नियम अधिक नहीं, । सकल चारित्र निर्ग्रन्थता, मूलगुणधारण, त्रिसंध्यसामायिक, नित्यनैमित्तिक कर्म, प्रायश्चित्त, उपवास, त्याग आदि झगडे झंझट अधिक नहीं हैं। वेदान्तीजन स्थूलशरीरी होकर जीवन यात्रा करते हैं। इह लोक, प्रव्रज्या, बहिष्टत्याग, देवपूजा, तीर्थयात्रा आदि झुझतोंमें कौन पडे ?।

गोम्मटसारमें अरबों,खरबों नीलों,पद्मों,मनुष्योंमें एक मनुष्यको भावसम्यग्दृष्टि कहा है, द्रव्यसम्यग्दृष्टियोंकी संख्या सैकडों गुणी है। अतः अध्यात्मचिन्तन तो अतीव दुर्लभ है, किन्तु बहिरङ्ग अध्यात्म प्रतिपादन अति सुलभ है। यथार्थ बात यह है कि गुरुओंके प्रश्रयमें, पठनीय शास्त्रोंमें अध्यात्मशास्त्र सबसे सरल हैं।

न कोई निविड पंक्तियां हैं, न रातको चोटी बांधकर आंखोंमें पानी लगाते हुए अधिक अध्ययनपरिश्रम है। आत्माके मधुर गीत गाये कि स्वयंको और श्रोताओंको आनन्द मग्न कर दिया। आह! आह! वाह! वाह! कहने लगे। सबको नकली लहरें आने लगीं। वक्ताकी प्रशंसाके ढेर लगा दिये। बनारसमें न्याय, व्याकरण मीमांसा सांख्य, वेद, साहित्यकी आचार्य परीक्षाओंसे वेदन्तकी आचार्यपरीक्षा नितान्त सरल समझी जाती है। पचास साठ वर्ष प्रथमकी बात है। सभी जैन छात्र साहित्य काव्य ग्रन्थोंको पढते थे। न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण और काव्यमें काव्यशास्त्र सबसे सुगम हैं। जैपुर बनारस या कलकत्तेकी यूनिवर्सिटीकी साहित्य, शास्त्री, काव्यतीर्थ परीक्षाओंमें अनेक छात्र उत्तीर्ण हुए। साहित्य काव्योंके पढनेमें बडा आनन्द आता है। साहित्यदर्पणमें कहा है कि "ब्रम्हास्वादसहोदरः" परब्रम्हके मोक्ष प्राप्तिके आनन्दमें मग्न हो जानेका छोटा भाई काव्यरस स्वाद है। कविने कहा है, "कं पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवसामो वयं भुवि, किं वा काव्यरसः स्वादुः, किं वा स्वादीयसी सुधा"। अमृतपायी देवता लोग स्वर्गमें रहते हैं। हम कविजन पृथ्वीपर निवास करते हैं। हम किससे पूंछे कि अमृतपानमें अधिक स्वाद है? अथवा काव्यरसपानमें? तास खेलनें, सिनेमा देखने, शृंगारी गाना सुनने नृत्य अवलोकनसे, भी अधिक काव्योंके सुननेमें मजा आता है।

ऐसी कविताको सुनकर रसिक यों कहने लगते हैं कि वाह! वाह! क्या कहना है! मार डाला। (क्या आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक दुःखोंको मार डाला! या कवियोंको मार डाला! अथवा अज्ञान, मानसिक शारीरिक कमजोरियोंको मार डाला! इस तरहका रहस्य वे ही जानें) यों बातें करते हुए श्रोता लोट पोट हो जाते हैं। कविताओंको गद्दा, तकिया लगाये लेटे लेटे पढ़ते रहो। सुखमें मग्न हो जाओगे। शृंगार रसके दो काव्य सुनिये:—

तन्वी बाला कृपतनुरियम् त्यज्यतामत्र शंका।
'दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना॥
एषा बाला रहसि भवने निर्दयं पीडनीया,।
मंदाक्रान्ता बहुतररसं नो ददातीक्षुदण्डः॥
वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूर्णपद्मा-।
सोपानालीमधिगतवती कांचनीमैन्द्रनीली॥
अग्रे शैलौ प्रकृतिसुभगौ प्रस्तुतच्छन्नदेशौ।
तत्रत्यानाम् सुलभममृतं सन्निधानात् सुधांशोः॥

इन अश्लील पद्योंका अर्थ हम नहीं लिखेंगे। किसी रसिक कविसे अर्थ करा लीजिये। जीवन्धर चम्पूका भी एक काव्य सुनिये।

गद्यावली पद्यपरंपरा च, प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदं,
हर्षप्रकर्षं कुरुते मिलित्वा, द्राग् बाल्यतारुण्यवतीव कांता।

एक काव्य जिनेन्द्रस्तुतिका पढ़िये:—

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमाञ्चसत्कञ्चुकै-
र्देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटं ।
किञ्चान्यत्सुरसुन्दरी कुचतटप्रान्तावनद्धोत्तम-।
प्रेखद्वल्लकिनादझङ्कृतमहो तत्केन संवर्ण्यते ॥

(भूपालचतुर्विंशतिका)

यों कविलोग बड़े मौजी होते हैं। आज कल भी कविसम्मेलन बहुत होते हैं। रातके दो बज जाते हैं, श्रोता उठते ही नहीं हैं। हां, यदि न्याय या सिद्धान्तकी चर्चा होय तो दस मिनटमें ऊब जायेंगे। यों बारह वर्षके युगतक साहित्य पठनपाठनमें आया, क्रमसे थोड़ा व्याकरणपर भी लक्ष्य गया, चलो संस्कृत भाषाका अध्ययन अध्यापन तो चालू हुआ। पुनः वीस वर्ष पश्चात् न्यायदिवाकर पं. पन्नालालजीकी प्रेरणा और वन्दनीय गणेशप्रसादजी वर्णीके उद्युक्त हो जानेपर न्यायशास्त्रोंके अध्ययनका युग आया। न्याय विषय रूखा है, भारी परिश्रम करना पड़ता है, पंक्ति लगाते पूस, माघमें पसीना आ जाता है। श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री ग्रन्थ कठिन हैं। पढने पढानेवाले भी विरले हैं। दसमें दो तीव्र बुद्धि छात्र न्यायको लेते हैं, न्यायसे भी सिद्धान्त ग्रन्थ और कठिन हैं। अतः गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार

ग्रन्थोंके अध्ययनपर किसीकी रुचि नहीं गयी । तब गुरु गोपालदासजीने सिद्धान्त विषयोंका अध्यापन प्रारम्भ किया । गोम्मटसार, धवला आदिमें बहुत सूक्ष्म चर्चायें हैं । एक प्रमेयपर महिनों मस्तिष्क लडाये जाओ । किन्तु अध्यात्म शास्त्रोंमें कोई प्रमेयसम्बन्धी कठिनता नहीं, साहित्यसे भी सरल है । न्याय और सिद्धान्तका वेत्ता विद्वान् एक वर्षतक प्रतिदिन दो, दो घंटे बोले तब भी नई नई अपुनरुक्त बातें कहता रहेगा । जीवोंके भेद, नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु पर्वत, समवसरण, सिद्धक्षेत्र, द्रव्य, गुण हेतु, आदिकी व्याख्याओंमें ही दस दस दिन चाहिये । किन्तु आध्यात्मवेत्ता पंडित प्रथम दिनके दो घंटेमें ही दसों बार पुनरुक्त कहेगा, "आत्मा शुद्ध है, निरञ्जन है । " यही बोलता जायगा । इसमें भी पुनरुक्त दोष है, शुद्ध और निरञ्जन एक ही बात है । दूसरा प्रयोजन यह भी है कि खाने पीनेकी अधिक शुद्धता, घंटोंतक देव दर्शन, पूजन, प्रवास दुःखाकीर्ण तीर्थयात्रा इन्द्रियदमन, परीषहसहन, वज्रोपम न्यायसिद्धान्त ग्रन्थोंके स्वाध्यायकी मथापच्ची आदि शरीर, मनः, आत्माको, कष्ट देनेवाले झगडोंमें कौन पडे ! जब हलुआ, मक्खन खाते खाते मोक्ष मिल जाय, तो कौन मूर्ख प्रवृत्तिरूप लोहेके चना चबानेकी आपत्ति मोल लेवे । तभी तो वल्लभ सम्प्रदायवाले लौकिक मौज मारते हुए भगवत् क्रीडा मात्रसे सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य, निःश्रे-

यस हो जाना मान लेते है। भगवान्‌के लोकमें पहुंच जाना, भगवान्‌के समीप बैठ जाना, भगवान्‌से संयुक्त हो जाना, भगवान् स्वरूप हो जाना ये चार प्रकारकी मुक्तियां हैं। बालकृष्णके साथ खेलो, गोप, गोपी क्रीडा, करो रास रचाओ, कीर्तन करो, बेडा पार है।

“ अर्के चेन्मधु विंदेत किमर्थं पर्वतं व्रजेत ”। इन लोगोंका मन न घंटों देव दर्शनमें लगता है, न जिन पूजनमें, तीर्थयात्रा में भी नहीं। व्यवहार चारित्रकी पूरी उपेक्षा करते हैं। जब कि आज कलके सभी मुनिमहाराजतक श्रावक जनोंको सिद्धचक्र विधान, मह, अभिषेक, यज्ञोपवीतधारण, मूलगुण धारण, अन्य प्रतिज्ञायें आदि कराते हैं, स्वयं तीर्थ यात्रा करते कराते हैं, किन्तु आत्मवादियोंमें व्यवहार चारित्रकी शिथिलता पायी जाती है। क्योंकि चारित्रके निमित्तोंको मिलानेकी ओर इनका लक्ष्य ही नहीं है, धर्म्यक्रियाओंके निमित्तोंकी ओर इनकी अरुचि है। झट द्रव्य की ओर दृष्टि चली जाती है। जब कि रोटी, दालका आठ घंटेमें रक्त, मांस, मल बन जाता है, रक्त, मांस, मल, मूत्र भी १०।५ दिनमें खात होकर शाक, तरकारी बन जाते हैं, जन्मांतर की माता इस जन्ममें स्त्री हो जाती है, इस पर्यायकी स्त्री परभवमें माता हो सकती है, पूर्व जन्मके हमारे सोना, चांदी, वर्तन, भूषण, इस पर्यायमें दूसरोंके बन बैठते हैं, हम दूसरोंकी वस्तु-

ओंके स्वामी हो जाते हैं, यों भक्ष्य, अभक्ष्य, अचौर्य, ब्रम्हाणुव्रत ये सब इदानीन्तन पर्यायोंपर अवलम्बित हैं, क्रियाकोष पर्यायोंपर लक्ष्य देनेकी प्रेरणा करता है, किन्तु इनकी दृष्टि सर्वदा द्रव्यपर पहुंच जाती है। आत्मा शुद्ध है,पुद्गल द्रव्य भी शुद्ध है। 'द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया' (अमृतचन्द्र आचार्य) आत्माको व्यर्थ कष्ट क्यों दिया जाय। ये आत्मैकतानवादी भोजनके समय डाटके भोजन करेंगे। दूध, रबडी, मलाई, फलोंका आनन्द लेंगे, जाडा लगते ही बढिया सौड ओढ लेगें, रोग अवस्थामें मूल्यवान् अन्यर्थ औषधियोंका प्रयोग करेंगे, प्यास लगनेपर हिमशीतल जलका उपयोग करेंगे, वाणिज्य द्वारा अर्थोपार्जन करेंगे। यों निमित्तकारण दूसरोंसे स्वकीय प्रयोजनको सिद्ध कर लेंगे। किन्तु देवदर्शन, पूजन या अतिशय क्षेत्र वन्दनासे किसीको लौकिक लाभ हो जाय तो झटपट मिथ्यादृष्टि कह देनेका तयार हो जाते हैं। भोले भाले श्रोता भी इनकी हांमें हां तत्काल मिला देते हैं, भले ही मन वचन कायकी प्रवृत्ति अन्यथा होय। ये मैनासुन्दरीने जिनाभिषेक लगाकर पतिकी कुष्ठव्याधिका नाश कर दिया, या मानतुंग आचार्य, वादिराज तपस्वी, विष्णुकुमारने अभीष्ट सिद्ध कर जिनमार्गप्रभावना की तो इस अव्यभिचारी कार्य कारणभावको तोड नहीं सकते हैं। महाविद्वान् धनञ्जयकी अखण्ड जिनेन्द्रस्तुतिने सर्पदंष्ट लडकेको निर्विष कर

दिया। " द्रौपदिका चीर बढायो, अञ्जनसे किये अकामी " इनमें क्या मिथ्यात्वभूत घुस पडा है। व्यर्थमें मुग्ध जैनजनताको वरगला जाता है। ये ठीक है कि अव्यवहित कारण आत्मशक्ति भी हैं, किन्तु बाबा, पडबाबाको भी बाप कह देना कोई पाप नहीं है। " इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः " न कीजियेगा। आहारक शरीर आखोंसे केवलीके दर्शन ही तो करता है। " णामो अरहंताणं " यों परद्रव्यको नमस्कार करता हुआ सुभग नामका ग्वाला सुद-दर्शन सेठ होकर पटनासे मोक्ष चला गया। " अर्हच्चरणसपर्या महानुभावं महात्मनामवदत् " श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि जिनचरण पूजाके महात्म्यको बखान रहा मेंढक हाथीके पावसे कुचला गया। स्वर्गी बन गया। तत्काल मेंढकका मुकुट लगाकर संस्कारानुसार श्री महावीर स्वामीके दर्शन पूजनार्थ समवसरणमें आ गया। मिथिलाके राजा पद्मरथपर दो देवोंने महान् विघ्न किये। वह दोडा हुआ वासुपूज्य भगवान्के समवसरणमें जाकर " वासुपूज्याय नमः" कह कर पर द्रव्यकी स्तुति करने लगा। तत्काल इन्द्रोंसे पूजित होकर वहीं तद्भवमोक्षगामी गणधर बन बैठा।

"यथा कथंञ्चिद् भजतां जिनं निर्व्याज चेतसां।
नश्यन्ति सर्वदुःखानि दिशः कामान् दुहन्ति च" ॥

यह निमित्त कारणोंकी प्रशंसा सत्यार्थ है। किस निमित्त से क्या हो जाता है ? इसको सर्वज्ञ ही जान सकते हैं। हम

और क्या जाने। अनादि निगोदसे व्यवहार राशिमें लानेके लिये कालणु ही जीवके कषायमान्द्यमें कारण हो सकती है, वहां एकेन्द्रियके उपदेश सुनना, जिनदर्शन, आत्मावलोकन, सब असम्भव हैं। " प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः " मरणासन्न कुत्तेको जीवन्धर स्वामीने नमस्कार मन्त्र दिया, उसके प्रभावसे कुत्ता वैमानिक देव बन गया। गृहस्थ पार्श्वनाथके मन्त्रदानसे साप, सापिन मर कर धरणेन्द्र पद्मावती बन गये। इन तीनों जीवोंकी अकाल मृत्यु हुई। यदि जीवन्धर और पार्श्व-नाथ कुछ मिनटों पहिले पहुंच जाते, और कुत्ते, साप, सापिनि जीवोंकी आयुष्यकर्मोदीरणाका प्रारम्भ न हुआ होता तो ये दोनों मोक्षगामी जीव उपायोंसे उन तीनोंका बाल बाल बचा लेते। जब औषधिया मरणासन्न चिररोगीको बचा लेती हैं, क्वचित् स्मशानों से अर्थिया लौट आई हैं, कोई कोई कबरस्तानसे उठ बैठे हैं, तो चरमशरीरी जीवोंकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय। किन्तु आयुः कर्मकी उदीरणा यदि प्रारम्भ हो गयी है तो अपमृत्यु निश्चित है।

" मो उर यह निश्चय भयो आज दुःख जलधि उतारन तुम जिहाज " महाविद्वान् दौलतरामजीके वाक्य प्रामाणिक हैं। यदि निमित्त कारण कुछ कार्यकारी नहीं होता और बुध्दू आत्मा ही सर्व सर्वा होता, तो हम आप आदि अनन्त जीव संसारमें क्यों

परिभ्रमण करते, इस हीन स्थान शरीरको न पकडे रहते। श्री विद्यानन्द आचार्यने " परतन्त्रोऽसौ हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात्, शरीरं हीनस्थानं आत्मनो दुःखहेतुत्वात्, " यों संसारी जीवोंको परतन्त्र बताया है। ये आत्माकी एक तान रटनेवाले पण्डित आत्माको स्वतन्त्र कह देते हैं। परद्रव्य आत्माका कुछ नहीं कर सकता है। अपना पदार्थ ही अपना बिगाड, सुधार कर देता है, आत्माको किसीकी आवश्यकता नहीं आदि ऐसे चतुर वक्ताओंके चातुर्यपूर्ण वाक्य श्रोताओंके कानोंमें घुसकर भारी प्रभाव डाल देते हैं। ऐसे श्रोताओंपर पुनः कोई रंग चढता नहीं है। क्योंकि ये श्रोता पहिलेसे न्यायशास्त्र, गोम्मटसार आदिका अन्तःप्रवेशी स्वाध्याय नहीं कर सके हैं। कोरे घडमें हींगकी वास भर दी जाती है। फिर क्या होता है! नया मुसलमान अल्लाह ही अल्ला (आत्मा) बोलता है। संस्कृतमें अल्लाका अर्थ आत्मा है। देखो अपना पदार्थ कभी अपना बिगाड नहीं करता है। हम तो कहते हैं कि द्वादशाङ्ग संबंधी उपलब्ध न्यायशास्त्र, आचार शास्त्र, गोम्मटसार, महापुराण, धवल, यशस्तिलकचम्पू, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, बृहत्स्वयम्भू, भक्तामर, प्रतिष्ठापाठ, त्रिलोकसार, प्रवचनसार, न्यायविनिश्चय, प्रमेयकमलमार्तण्ड, जैनेन्द्रव्याकरण आदि सभी जिनवाणीका अन्तस्तलप्रवेशी अध्ययन कीजिये, तब कहीं प्रमाणगम्य अंशरूप प्रमेयोंका परिज्ञान होगा। केवल आत्म-

प्रवादपूर्वके कुछ भागको कहनेवाले दो, एक शास्त्रके पल्लवग्राहि पाण्डित्यसे द्वादशाङ्गसमुद्रका अवगाहन नहीं हो जाता है। किसी एक शास्त्रको पढकर अन्य शास्त्रोंके अबाधित दृढतर विषयोंका खण्डन मत करो। परद्रव्य भी अनन्त बहुभाग कार्योंको साध रहा है, जब कि आत्मा अनन्तैकभाग कार्यको स्वतन्त्र बना पाता है।

भ्रातारः, आजकल शुक्ल ध्यान तो होता नहीं। चौथेसे लेकर निरतिशय सातवें गुणस्थानतक धर्म्यध्यान होता है। ये आत्मैकतान प्रवादी केवल आत्माहीका ध्यान करते रहनेपर जोर दे रहे हैं। परन्तु विचारिये, सूत्रकारने धर्म्यध्यानके चार भेद किये हैं। १ आज्ञाविचय—स्मृतिसमन्वाहार २ अपायविचय समन्वाहार ३ विपाकविचय ४ संस्थानविचय।

[सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक अनुसार]

इनका संक्षिप्तार्थ यों है कि ध्यानक्रियाके आज्ञा आदि चार कर्म हैं। ध्याता आत्मासे आज्ञा, संस्थान आदि कर्म न्यारे हैं।

१ आज्ञाविचय—सच्चे उपदेशकोंका अभाव होनेसे अथवा सूक्ष्मतत्त्वोंमें प्रत्यक्ष, युक्ति, दृष्टान्त, न होनेपर सर्वज्ञकी आज्ञा प्रमाण करके ज्ञेयोंका अर्थनिर्णय करना यानी स्मृतियोंकी धकापेल लैन लगा देना आज्ञाविचय ध्यान है। तथा भगवान्की आज्ञाके

प्रकाशनार्थ तर्क, हेतु, नयोंद्वारा प्रवक्ताओंके भाषण करा कर सर्वज्ञाज्ञाकी प्रभावना करना, यह चिन्तन आज्ञा ध्यान है। (२) जन्मांधोंके समान ये मिथ्यादृष्टी प्राणी श्रेष्ठमार्गको भूलकर जिनेन्द्र मार्गसे विमुख यहां वहां नष्ट हो रहे हैं। तथा इन मिथ्यावादियोंके कुज्ञानपाश या अनायतनसेवाकी निवृत्ति कैसे होय, यह विचार दूसरा धर्म्यध्यान है। (३) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव इन निमित्तोंके अनुसार ज्ञानावरण आदि कर्मोंके फलोंकी ओर चित्त लगाना, कि किस कर्मका कहां उदय है, कहां उदीरणा होती है, इत्यादि विशेष, विशेषांश अवगाही प्रमाणात्मक स्मरणोंके पीछे धकापेल स्मरणोंको उपजाते रहना तीसरा धर्म्यध्यान है। [४] लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है, तीन वायुयोंके आश्रित है, सबसे ऊपर तनुवातवलयमें सिद्ध भगवान् विराजमान हैं, अन्य भी अनन्ते स्थावर जीव हैं। उसके नीचे सर्वार्थसिद्धि, अनुदिश ग्रैवेयक और स्वर्गोंके त्रेषठ पटल हैं, इनमें पञ्चेन्द्रियोंके भोगोपभोग भोगे जा रहे हैं। असंख्याते देव, देवांगनायें मौज मार रहे हैं. स्वर्गके नीचे ज्योतिष चक्र है। मध्य लोकमें असंख्याते द्वीप समुद्र हैं। अन्तिम समुद्र आर और अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीपमें कर्मभूमि रचना है। द्वीपमें असंख्याते तिर्यञ्च देशव्रती हैं। समुद्रमें असंख्य राघव, तन्दुल मत्स्य हैं, जो कि मरकर बहुभाग सातों नरकोंमें जाते हैं। भीतर ढाई द्वीपोंमें १५ कर्मभूमियां हैं। मध्य लोकमें ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। कर्मभूमियोंमें बाहर चल-

नेवाले और त्रस शरीरोंके भीतर भी तथा भोगभूमिके पञ्चेन्द्रिय जीवोंके मात्र शरीरोंमें असंख्याते विकलत्रय हैं। अधोलोकमें ४९ नरक पटल हैं। उनके नीचे सात राजू लम्बा चौडा, एक राजू ऊंचा, निगोदस्थान है। लोक छःऊ और वातत्रयसे वेष्टित है। अनन्त राजू लम्ब, चौडे, ऊंचे, घन चौकोर अलोकके ठीक बीचमें है, इत्यादिक देरतक चिन्तन सब ज्ञानपिण्ड चौथा धर्म्यध्यान है। यों परपदार्थोंके सहारे ही ध्यान जमा। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ ध्यानोंमें भी परका अवलम्ब है। साथ ही आत्माके द्रव्य, गुणपर्यायोंका भी चिन्तन होता रहे, कोई क्षति नहीं। परके ज्ञान या ध्यानसे दुष्कर्मबंध नहीं हो जाता है। परपदार्थसे, इतने डरो नहीं। कहीं ऐसा न हो जाय कि ग्यारह अंग नौ पूर्व पाठीके समान निज आत्मज्ञान हो नहीं पावे, और आज्ञा अपाय, विपाक, संस्थान चारोंको परद्रव्योंका ध्यान बताकर छोड दिया जावे, तब तो बडी कठिन समस्या खडी हो जायगी। " पाडेजी यहाके रहे न वहाके " " इतो व्याघ्र इतो नदी "। केवल आत्मापर निरालम्बध्यान अधिक समय तक जमता नहीं है। हां, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और ज्ञानार्णवके कर्त्ता महानाचार्योंके मन्तव्यानुसार पर पदार्थोंका अवलम्ब लेकर चारों धर्म्यध्यानोंमें मुनियों, श्रावकों और सम्यग्दृष्टियोंका सद्विचार बहुत कालतक ठहरा रह सकता है। धर्मका ध्यान नहीं, किन्तु धर्मसे अनपेत अन्य पदार्थ धर्म्यका ध्यान धर्म्यध्यान

है। यह धर्म्य शद्बकी निरुक्ति है। धर्म्य कहो धर्म न बोलो। चार ज्ञानके धारी श्री आदीश्वर भगवान् भी तपस्या करते समय कुछ अन्तर्मुहूर्त न्यून हजार वर्षोतक इन्ही चारों धर्म्यध्यानोंको ध्यावते रहे।

मुमुक्षु भाइयो! परपदार्थका चिन्तन करनेसे क्या आपत्ति आगई? सर्वज्ञ देव, या सिद्धपरमेष्ठी अनन्तानन्त परपदार्थोंको जानते हैं, इससे क्या विगड गया? प्रव्रज्याके समय श्रुतज्ञानी तीर्थंकर भी सिद्धोंका ध्यान करते हैं। कर्म कोई मरखने वैल या शिकारी कुत्ते नहीं हैं, जो विना कारण ऊपर चढ वैठेंगे। विज्ञ-वर! परपदार्थका चिन्तन तो प्रथम शुक्लध्यानमें भी है। "वीचारोर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिः" अर्थसे अर्थान्तर, वचनसे वचनान्तर होता रहता है। पुद्गल परमाणुका विचार छोडकर भावपरमाणु या कालाणुका विचार किया जा सकता है। 'णमो अरहन्ताणं' पदको त्यागकर 'णमो सिद्धाण' वाक्यपर ध्यान जमाया जाता है। फिर भी वही एक ध्यान (अनेक ज्ञानोंकी लडी) बना रहेगा। अन्तर्मुहूर्ततक ध्यान एक ही रहेगा, हां, ज्ञान असंख्याते हो जायेंगे। ज्ञानोंके पिण्डको ही ध्यान कहते हैं, ध्यान कोई भूत या बलाय नहीं। सम्यक्त्व या चारित्रगुणका परिणाम भी नहीं है। "ज्ञानमेवापरिस्पन्दमानमपरिस्पन्दाग्नि-शिखावदवभासमानं ध्यानं (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २२१)"। इतना ख्याल रखना कि एक पदार्थका ध्यान करते हुए जो अनेक ज्ञान-

उपजते हैं, वे सब नवीन नवीन अंशोंको जाननेवाले अपूर्वार्थ ग्राही हैं। "स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणं" [माणिक्यनंदी] "अनिश्चितोऽपूर्वार्थः" जिसका निश्चय नहीं हुआ है, वह अपूर्व अर्थ है। मात्र "शुद्धोहं, बुद्धोहं, निरञ्जनोऽहं, सोऽहं" यों मिनटोंतक वैसाका वैसा ही ध्यान कर रहे ध्याताने अप्रमाण ज्ञानोंकी पंक्ति उपजाई है। वह ध्यान प्रमाणज्ञानोंकी पंक्ति नहीं है। जैसे कि द्रव्यलिङ्गी कोटि जन्मतक तप अवस्थाओंमें वह का वही ध्यावता रहता है। यह परिश्रम व्यर्थ (बेकार) है। पूर्ण गर्भिणी, चिररुग्ण, वमन रोगी, बालक, इनका रोजा अल्लाह मियाको स्वीकृत नहीं होगा। इतनेके इतने ही पूर्वार्थग्राही धारावाहिक ज्ञानोंको जैन न्यायसिद्धांतमें प्रमाण नहीं माना गया है। "प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" प्रत्येक क्षणमें जो नवीन नव्य सुभग रूपको धारण करता है, वही सौंदर्यका सच्चा आकार है। यह श्रृंगारी कवियोंका मन्तव्य है। परन्तु ' प्रतिक्षणं वेत्ति नवं नवं यत् तदेव प्रामाण्यमभीप्यते नः" जो प्रति समय अपूर्व अपूर्व प्रमेयोंको जानता है, वही प्रमाणताका प्राण है। यह जैन न्यायवेत्ताओंका अक्षुण्ण सिद्धांत है। हां, मीमांसक सम्प्रदायी धारावाहिक ज्ञानोंको प्रमाण मानते हैं। मीमांसक बने रहनेमें एक लाभ अवश्य है कि ध्याताको मीमांसक मिथ्यादृष्टीकी अवस्थामें मनुष्य आयुका बंध हो जायगा। दस बीस वर्षमें विदेहक्षेत्रमें मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जानेकी प्रति-

स्पर्धा (कम्पिटीशन) परीक्षामें बैठ सकते हैं । किंतु कर्मभूमिके मनुष्योंके सम्यक्त्व अवस्थामें वैमानिक देव आयुका ही बंध होगा, तब वहा स्वर्गोंमें करोडों, अरबों, असंख्याते वर्षोंतक पञ्चेन्द्रियोंके भोग भोगने पड़ेंगे, महाव्रत नहीं ले पायेंगे । पराधीन अवस्थामें असंख्याते वर्ष बिताकर तब तीसरे जन्ममें विदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्षकी कम्पिटीशन परीक्षा दे सकेंगे । इस टोटा या नफाके धंधेको आप सोच समझ लें । वर्षभरका मार्ग अच्छा या छह महिनेका ? कहीं मिथ्यात्वका तीव्र उदय होकर असंख्याते जन्मोंतक पुनः संसार भ्रमण न करना पडे, लेनेके देने पड जाय । मीमांसक, अजमेध, अश्वमेध, आदि अनेक हिंसामय यज्ञोंको करते हैं । उतनेके उतने ही को जानते हुये जाप्य भले ही देते रहो । थोडा पुण्य बंधजायगा ।

मुग्ध बंधुओ ! आप न्यायशास्त्रोंका स्वाध्याय अवश्य करें । प्रमेयकमलमार्तण्डको किसी विद्वानसे सीखें । कमसे कम न्यायदीपिका, परीक्षामुखको ही पढ देखें, तब आपको कारणोंका परिज्ञान हो जायगा । आप अपने ज्ञातव्य तत्त्वको ठीक समझ लेवें । एक दृष्टांत है । एक जौहरीने अपनी बहिन दूसरे जौहरीको व्याह दी । जौहरियोंके यहां नकली जवाहरात भी रहते हैं । दैवयोगसे वीस वर्ष पीछे बहनोई मर गया । बहिनने अपने बारह; चौदह वर्षके लडकोंसे कहा कि ये रत्न ले जाओ, मामाके यहां बेचकर रुपये

ले आओ, जिससे कि उदरनिर्वाह हो सके । माताकी आज्ञानुसार लडके नकली जवाहरातोंकी पोटलिया लेकर मामाके पास देशान्तर गये । जौहरी मामाने कच्चे रत्नोंको देखा, मनमें विचारा कि मैं यदि सत्य कहता हूं कि ये नकली रत्न हैं, तो मेरी बहिन यह समझेगी कि भैया हमें ठगना चाहता है । तभी तो पक्के रत्नोंको कच्चे बता रहा है । अतः बुद्धिमान मामाने भानजोंसे कहा कि अभी तो ये रत्न जीजीके पास ले जाओ, बाजारमें बिक्री नहीं है, इस समय भाव मन्दा है । तेजी आनेपर मंगा लूंगा, और हजार रुपये खर्चेके लिये ले जाओ । मुग्ध भानजे अपने गाव चले गये । दो मास पीछे मामाने भानजोंको अध्ययनार्थ बुलाया । एक वर्षमें लडकोंको पूरा रत्नपरीक्षक बना दिया । तब कहा कि भागिनेयो ! अब वे रत्न ले आओ, बाजारमें भाव अच्छा है । लडकोंने घर जाकर मातासे कहा कि अम्मा ! रत्न दे दीजिये, हम बाजारमें बेचेंगे । मैयाने तिजोरीमेंसे रत्न निकाले लडकोंने रत्न देखते ही कहा कि माताजी ये सब रत्न झूंटे हैं, ऐमिटेशन हैं, काच हैं । इतनेमें मामाजी भी आ गये, यथार्थ बात कह दी । मामाने भानजोंके साथ अपनी दोनों लडकियोंका विवाह कर दिया तब सब जने यथार्थ मार्गपर आगये ।

" बंधुओ ! अकलंक देव, माणिक्यनन्दी आदि उद्भट आचार्योंके रत्नपरीक्षा न्यायशास्त्रोंका गंभीर गवेषण कीजियेगा ।

राजवार्तिकमें " निष्क्रियाणि च " सूत्रकी टीकामें " उभय-निमित्तापेक्षः पर्यायविशेषो द्रव्यस्य देशांतरप्राप्तिहेतुः क्रिया "यों निमित्त कारणके बहिरंग और अन्तरंग रूपसे नोदन अभिघात आदि अनेक भेद माने हैं। तब कहीं एक कार्य क्रिया उपजती है। "उत्पादः स्वनिनिमित्तः परप्रत्ययश्च " यों द्रव्यके एक गुणको उपादान कारण मानकर उस गुणके पूरे गुणीको निमित्त कारण ठहराया है। परपदार्थको अत्यावश्यक कारण माना है। इसके आगे श्री अकलंक देवने धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्योंको गतिस्थिति अवगाहन परिणामोंका बलाधान कारण अभीष्ट किया है। गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः " सूत्रकी व्याख्या करते समय भट्टाकलंक देवने " कार्यस्यानेकोपकरणसाध्यत्वात् तत्सिद्धेः " इह लोके कार्यमनेकोपकरणसाध्यं दृष्टं " यहां एक कार्यमें अनेक कारण स्वीकार किये हैं। नैक एव मृत्पिंडः कुलालादिबाह्यसाधनसन्निधानेन विना घटात्मनाविर्भवितुं समर्थः तथा पतत्रिप्रभृति-द्रव्यगतिस्थितिपरिणामप्राप्तिप्रत्यभिमुखं नांतरेण बाह्यानेककारण-सन्निधिं गतिस्थितिं वा प्राप्तुमलमिति तदुपग्रहकारणधर्माधर्मा-स्तिकायसिद्धिः"तस्मात साध्यत्वात कार्यस्य अनेक कारणत्वसिद्धिः" " विषयसंसर्गापेक्षत्वादनेककारणत्वसिद्धिः " अनेककारणसाध्यत्वात् संसर्गस्य"यों श्री अकलंक देव भगवानने एक कार्यके प्रति अनेक कारण अथवा उनका संसर्गरूप सामग्रीको उत्पादक स्वीकार किया है।

" क्रियापरिणामक्रिया " इस सूत्रमें " द्रव्यस्य द्वितय-निमित्तवशादुत्पद्यमाना परिस्पन्दात्मिका क्रिया " सा द्विधा प्रयोग निमित्ता विस्रसा निमित्ता, प्रयोगिकी शकटादीनां विस्रसा निमित्ता मेघादीनां (पृष्ठ २२७) यों एक कार्यके अनेक कारणोंका उल्लेख है।

संहतानां द्वितयनिमित्तवशात् विदारणं भेदः (पृ. २३७) उत्पादके लक्षणमें " द्रव्यस्य चेतनस्याचेतनस्य वा स्वजाति मजहतः निमित्तवशात् भवान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः "(पृष्ठ२३८) यों अनेक स्थलोंपर विविध कारणोंका कण्ठोक्त निरूपण है। राज-वार्तिकमें छठा अध्याय तो निमित्तोंसे भरा पड़ा है। पृष्ठ ३१६ आत्मनो द्रव्यादिहेतुकभवान्तरावाप्तिः संसार., तन्निमित्ताक्रिया-परिणामस्य निवृत्तिर्मोक्षसंवरः "

" मिथ्यादर्शनकर्मोदयेन वशीकृतो जीवो मिथ्यादृष्टिः " अनन्तानुबन्धिकषायोदयकलुषीकृतान्तरात्मा जीवः सासादन सम्य-ग्दृष्टिः " सम्यङ्मिथ्यात्वोदयात् आत्मा तत्त्वार्थश्रद्धानाश्रद्धानरूपः सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः " यों द्रव्यादिको निमित्त पाकर आत्माको विकारी, मिथ्यादृष्टि होता हुआ माना है। द्रव्यादि निमित्ता आत्मनो भवान्तरावाप्तिः संसारः (राजवार्त्तिक २२७ पृ.) ध्यानोत्पत्ते हिंसादीनां निमित्तभावाद्धेतुनिर्देशः (रा. वा. पृ. ३५२)

यों एक कार्यके प्रति अनेक कारणोंका आर्ष ग्रन्थोंमें स्पष्ट कण्ठोक्ति है। किन्तु अध्यात्मयोगी श्री कानजी स्वामीके प्रव-

चनोंके अनुसार लिखे गये परन्तु निज्ञानसारमें निमित्तोंको अकिञ्चित्कर बताया गया है। सूर्यके उदयसे धूप हो गयी, पेट्रोलसे मोटर चलती है, लोहचुम्बक सुईको खींचता है, गौतम गणधरके निमित्तसे वीरवाणी खिरी, गुरुके निमित्तसे ज्ञान उपजता है, इन्द्रियोंसे मतिज्ञान होता है, इन सभी सिद्धान्ततत्त्वोंका स्वामीजीने खण्डन कर दिया है। पूर्वोक्त कार्यकारी निमित्तनैमित्तिकभावकी मान्यताको मिथ्यात्व कहा है। महान् उद्भट आचार्योंकी सैद्धान्तिक व्यवस्थाको मिथ्या कहना यह स्वामीजीका अतिसाहस है। यों तो देशनालब्धि, क्षायिकसम्यक्त्व, श्रुतपंचमी, महावीरजयन्ती, रक्षाबन्धन पर्व, निर्वाण दिवस, तीर्थस्थान, मानवको मोक्षप्राप्ति, सकल संयमप्राप्ति, क्षपक श्रेणि आदि सभी सर्व पराश्रित तत्त्वव्यवस्थायें टूट जायेंगी। खाना, पीना, पढना, दर्शन, पूजन, तीर्थयात्रा, दीक्षा, लेना श्रावकों या मुनियोंके छह आवश्यक, उपदेश देना, ग्रन्थ बनाना, गुरूपासना दान, ये सब कार्य व्यर्थ हो जायेंगे।

जब परपदार्थ कुछ करता ही नहीं है, तब तो बाईस प्रकारकी वर्गणायें कुछ कर नहीं सकेंगी। पुनः जीवकी योग शक्ति द्वारा पाच वर्गणाओंका आकर्षण तथा पुद्गल और जीवमें विद्यमान वैभाविक शक्ति अनुसार हुए विभाव परिणाम कुछ नहीं ठहरेंगे। तीर्थङ्कर भगवान् भले ही अपने कर्मोंका विनाश कर दें

किन्तु जगद्वर्ती कार्मण वर्गणाओंका समूलचूल नाश, तीर्थङ्कर महाराज भी नहीं कर सके । यदि कर्मवर्गणायें मर जातीं तो संसारकी झंझट ही मिट जाती । ये ही तो बन्ध कर जीवको पराधीन कर देती हैं । 'बन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी" तस्याम् सत्यामशुद्धत्वम्, तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः (पञ्चाध्यायी) अनचाहे स्वकारणों अनुसार जीवसे कर्म बन्ध जाते हैं । वे विभावभाव उपजा देते हैं । जगत्में अनन्तानन्त परद्रव्य पडे हुए हैं । इनसे हुए जीवविकारोंको पुरुषार्थ कर हटाओ । धैर्य, सन्तोष तपः, गुप्तियोंसे बन्धको छुडाओ । आप परपदार्थका नाश नहीं कर सकते हैं । आत्मासे बंधे हुए परपदार्थकी पर्यायान्तर कर सकते हैं । जैसे धोबी मैलको कपडेसे स्थानान्तर या अवस्थान्तर कर देता है, मैलका समूलचूल नाश नहीं कर सकता है । इस सिद्धान्त रहस्यको अष्टसहस्रीमें विशद परिभाषण किया है । "परद्रव्य कुछ नहीं कर सकता है ।" ऐसी बातोंसे परद्रव्य डरता नहीं है । वह निमित्त कारणोंके मिलनेपर अवश्य बंध जाता है । आत्मामें औदयिक विभाव परिणामोंको उपजाता रहता है । अनन्तानन्त संसारी आत्माओंके साथ बन्ध गया नोकर्म भी जीवको स्वानुकूल नचाता रहता है ।

" सदसद्वेद्येऽन्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशादुत्पद्यमानः प्रीतिपरितापरूपः परिणामः सुखदुःखमित्याख्यायते"

(सर्वार्थसिद्धिः १६७ पृष्ठ) यहां जीवकी सुख दुःख नामक परिणतिमें अन्तरंग कारण और बहिरङ्ग अनेक निमित्त कारणोंका प्रतिपादन है। " धर्मादीनां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्यभावाच्चत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः " (सर्वार्थसिद्धि १६८ पृष्ठ) इस पंक्ती द्वारा यह कहा गया है कि बहिरंग निमित्त उपकारकके बिना द्रव्योंकी वर्तना नहीं हो सकती है। निमित्तमात्रेपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति एवं कालस्य हेतुकर्तृता (सर्वार्थसिद्धि १६८ पृष्ठ)।

कालस्य व्ययोदयौ परप्रत्ययौ (सर्वार्थसिद्धि १८०) काल द्रव्यके व्यय और उदय परको कारण मानके होते हैं। अभ्यन्तर वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोलब्धिसन्निधाने बाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति मनःपरिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः। इस पंक्तिमें मनोयोगके अभ्यन्तर निमित्त और बहिरङ्ग निमित्तोंका निरूपण है। यों कतिपय अध्यायों और हजारों सूत्रोंमें सिद्धान्तवेत्ता आचार्योंने निमित्त कारणोंका उल्लेख किया है।

"परिणममानस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि॥"

(पुरुषार्थ सिध्युपाय)

आप्तमीमांसामें भी भाविर्तीर्थंकर श्रीसमन्तभद्राचार्य लिखते हैं कि:—

"क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः" यहां हेतुभ्यः ऐसे बहुवचनांत प्रयोगसे मलक्षयके अनेक कारणोंका निरूपण है।

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत् ।

नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ॥ (देवागम २१)

इसमें बहिरंग अंतरंग अनेक कारणोंसे कार्य होना इष्ट किया है।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः ।

तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः॥ (देवागम ९९)

इस कारिकामें कर्मबन्धके अनुसार काम, राग, द्वेष आदिकी उत्पत्ति होना लिखा है। ज्ञानावरण आदि कर्मोंके कारणसे विभाव उपजना माना है। और वे कर्म अपने अनेक हेतुओंसे बीजाङ्कुर वत् पैदा हो रहे स्वीकार किए हैं। यों आगमप्रमाण, अनुमान-प्रमाण, और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे, कार्यकी अनेक निमित्त कारणोंसे उत्पत्ति हुई प्रसिद्ध है। ऐसे सिद्धान्तका कौन विद्वान् निषेध कर सकता है। अर्थात् कोई नहीं।

कतिपय चतुर वक्ता ऐसा समझा देते हैं कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता है। जो कुछ होता है, वह अपनेसे ही होता है। परपदार्थसे कुछ आता जाता नहीं है, इत्यादि कथन श्रोताओंको भी बडा प्रिय लगता है। किन्तु इन कथनोंमें पूर्वापर विरोध है। वदतो व्याघात है। प्रत्यक्ष अनुमान आगम प्रमाणोंसे विरुद्धवादिता है।

देखो पराधीनतासे भय नहीं करो। पराधीनता अच्छी भी है। बुरी भी है। ज्वारी चोर डाकुओंकी पराधीनता बुरी है। गुरू, आचार्योंकी, पराधीनता अच्छी है। लोकमें भी प्रसिद्धि है कि सास ससुर पतिके अधीन बहू रहे। बेटी माता पिताके अधीन रहै। पुत्र माता पिताके। शिष्य गुरूके। जनता शासकोंके, मुनि आचार्यके, आचार्य आगमके अधीन रहें। इसमें कोई क्षति नहीं। सिद्ध भगवान् भी पराधीन सिद्धालयमें जाते हैं। ठहरते हैं, स्थान पाते है। वर्तना करते हैं, शुद्ध धर्म अधर्म द्रव्य भी पराधीन वर्तना करते हैं। यों परपदार्थका आश्रय लेना बुरा नहीं हैं। प्रत्युत अच्छा है, और अनिवार्य है। यदि परद्रव्यको कारण न माना जाय तो उत्पाद, व्यय, वर्तनायें, परिणमन, नहीं हो सकेंगे। द्रव्य कूटस्थ या गगन कुसुमवत् असत् पदार्थ बन बैठेगा जो कि किसीको अभीष्ट नहीं है।

कदाचित् जाप्य या ध्यान करते हुए आप तीर्थकरोंके पाच कल्याणकोंका विचार करते हैं। उसमें श्री, ह्री, धृति आदि देवियों और सोलह स्वप्न तथा सुदर्शन मेरु, पाण्डुक शिला, एक हजार आठ कलश, क्षीरसमुद्र एवं दीक्षाशिबिका केशलोच, मनःपर्ययज्ञान और समवसरण द्वादशांगवाणीका उपदेश, बारह सभा, मान-स्तम्भ नाट्यशाला, उपवन, खातिका, रत्नस्तूप, तथैव पिचासी प्रकृतियोंका नाश, लोकाग्रनिवास, तनुवातवलय, अष्टकर्मनाश प्रभृति

पदार्थोंका परामर्श करते हैं। कभी गौतमके प्रति इन्द्रकृत काल, द्रव्य, आदिका प्रश्न उपस्थित करनेपर भगवान् महावीरकी दिव्य-वाणी खिरती है कि—

" त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कम् नवपदसहितं जीवषट्कायलेश्याः।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः"

इत्यादि यों काल तीन हैं, द्रव्य छह, हैं, पदार्थ नौ हैं, आदि उत्तरों द्वारा परपदार्थका ही भृशम् चिन्तन करते हैं। इस चिन्तनको मोक्षका मूल अर्हन्तदेवने कहा है।

प्राज्ञवर्य ! परद्रव्यसे डरो नहीं, परद्रव्यसे ही परपदार्थ दूर होगा, " विषस्य विषमौषधं " कांटेसे कांटा निकलेगा। श्री विद्यानन्द स्वामी आप्तपरीक्षामें कहते हैं कि " श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः, प्रसादात् परमेष्ठिनः " पञ्चपरमेष्ठीके प्रसादसे कल्याण मार्गकी सिद्धि होती है। द्रव्य, क्षेत्र, काल भावोंसे आत्मीय परि-णामों द्वारा शुद्धि मानी गयी है। अशुद्ध हाथोंको मिट्टी, पानी, राखसे शुद्ध कर लेते हैं। बर्तनको राख, अग्निसे, पवित्र कर लेते हैं। समाधिमरणके लिये तीर्थस्थान निषद्या ठीक पडते हैं। घरमें रसोई घर अन्य स्थानोंसे पावन है। बाजार या रसोई घरोंसे मंदि-रजीका स्थान बहुत उच्च है। अष्टमी, चतुर्दशी काल शुद्ध माने गये हैं। तीर्थंकरोंके कल्याणक दिन पवित्र हैं। दशलक्षण दिनोंकी चतुर्दशी और अष्टान्हिका पर्वकी पूर्णिमाको ब्रम्हचर्य व्रत पालनेसे

एक कोटि गुना फल मिलता है । ठीक समयकी एक गोली चालीस वर्षतक जीवन दान कर देती है । जन्म मरणके सूतक पातककी दस बारह दिनोंमें काल द्वारा शुद्धि हो जाती है । मुनिमहाराज लौकिक झंझटोंसे दूर हैं, फिर भी उक्त शुद्धियोंको मानते हैं । पिताकी मृत्यु हो जानेपर एक दिनका पातक लग जाता है । स्नान, दातौन, नहीं करते हुए भी साधुपरमेष्ठी व्रती ब्रह्मचारी होनेके कारण पवित्र हैं । त्यागियोंको भी बहिरंग द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंकी शुद्धि माननी पडती है । दाताके आहार जल शुद्ध कहते ही मुनि उसके पवित्र भावोंका विश्वास कर आहार करने लग जाते हैं । इस संसारी जीवको परपदार्थोंसे उपकार प्राप्त हो रहा है । " शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् " पुद्गलसे शरीर बन जाता है । शरीरसे जिनदर्शन, पूजन, ध्यान, तपस्या, तीर्थयात्रा, किये जाते हैं । पौद्गलिक वचनों द्वारा उपदेश पाकर असंख्य जीवोंको सम्यग्दर्शन हो जाता है । द्वादशाङ्ग वाणी पुद्गलकी बनी हुई है । पुद्गलके बने मनसे धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान, ध्याय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । श्वास लेते हुए जीवनमें अनेक शुभ कार्य किये जाते हैं । इन्द्रियोंसे अनेक प्रशस्तक्रियायें करी जाती हैं । यों निमित्तकारणों द्वारा व्यापार करते हुए अनन्तकार्य सिद्ध किये जाते हैं । " भावेषु नित्येषु विकारहानेर्न कारकव्यापृतकार्ययुक्तिः (श्री समन्तभद्रकृत युक्त्यनुशासन) विकारी कारकोंमें व्यापार होते हुए ही कार्योंकी योजना बनती है । सर्वथा-

नित्योंमें नहीं। कार्य करते हुए निमित्तकारणोंमें सूक्ष्म, स्थूल अत्यधिक क्रान्तियां मचती हैं, जिनको कि उपादान कारण काल-त्रयमें नहीं कर सकता है, तब कहीं वे निमित्तकारण कार्यको बना पाते हैं। मन्दिरजीमें एक दस सेरका घण्टा सांकलसे बंधा शिखरमें लटक रहा है, वहां पांच गज लम्बी सांकरके प्रत्येक कुंदे-पर घण्टेको धारे रहनेके प्रतिक्षण परिणाम हो रहे हैं। एक कडी भी यदि इस कामको न करे तो वहींसे सांकल टूटकर घण्टा तत्काल गिर पडेगा। एक एक कडीके भी प्रत्येक सूक्ष्म अवयवमें घण्टेको झेले रहनेके विकार हो रहे हैं। आप पचास फुट गहरे कुएसे चार सेरके कलशमें दस सेर पानीको दो सेरकी रस्सीसे खींच रहे हैं, कूपसे ऊपर गर्रातक रस्सीके प्रत्येक लम्बाईके प्रदेशोंपर न्यारे न्यारे विवर्त हो रहे हैं। चालीस, तीस, बीस फुट-पर रस्सीमें या कलशकी झोकमें अंतर है। यहांतक कि एक एक इञ्च, सूतपर, भी विशेषतायें हैं। एक मालगाडीका इञ्जन पचास हजार मन बोझाको खींच रहा है। यदि एक मन बोझा घटा दिया जाय या बढा दिया जाय तो आकर्षण शक्तिमें गतिमें अन्तर पड जायगा। यहांतक कि सेर, छटाक, तोला, रत्ती, खस, बराबर बोझा बढानेपर भी गतिमें विशेषतायें हो जायंगी। आप उस अन्तरको नहीं समझ पायें तो यह समझकी त्रुटि है। निमित्तोंके सूक्ष्म व्यापार अवश्य हो रहे हैं। एक बजडामें हजार बोरी चना लदे हैं, तब बजडा एक फुट पानीमें नीचे धसक गया है। २,५०० मन

लाद रही बडी नावमेंसे यदि एक मन चना निकाल लिया जाय, तो बजडा पानीमें असंख्य प्रदेश ऊंचा उछल जायगा। यदि एक सेर चने और धर दिये जाय तो बजडा असंख्य प्रदेश पानीमें घुस जायगा, यों चौसठ करोड चनोंमें एक चनाको या चनोंको पीसकर एक कण भी धर दिया जाय या निकाल लिया जाय तो नावका उन्मग्न, निमग्न, होना अनिवार्य है। एक बालाग्र ऊंचाईमें पल्यसे असंख्यात गुणे आकाश प्रदेश हैं। कलकत्ताके २००० फुटसे अधिक लंबे एकस्कन्ध निःस्थम्भ पुलपर सैकडों मोटरें ट्रामगाडिया, हजारों ठेले, तथा लाखों मनुष्य आते जाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके गमन करनेपर पुलके झोक, आकर्षण धारण पर प्रभाव पडता है। यदि एक पिल्ला भी पुलपर कूदेगा, तो पुलको अपनी छोटीसी शक्ति लगाकर झेलना पडेगा, साधे रहना पडेगा। यों आदि, मध्य, उपान्त्य, अन्त्यमें पिल्लाको जानेमें पुलके अलग अलग परिणाम हैं। एक चर्मकार मथनामें अचार डालकर, मौडा बान्धके अलग हो जाता है। मथनाके भीतर आम, नींबू, मिरच, नमक, राई, हल्दी तेलमें कैसे कैसे घोर आन्दोलन होते हैं, द्वन्द्वयुद्ध मचते हैं, उन्हीपर बीतती है, तब अचार बन पाता है। जूटमिल, क्लौथ मिल, 'टाटामिल, इनमें निमित्तोंकी भारी हलचलें मच रही हैं। तब ये बोरिया मलमलें, चद्दरें, सरियायें आदि नैमित्तिक कार्योंको बना पाते हैं।

सूक्ष्म क्रियाओंपर कोई लक्ष्य न दे तो इसमें ज्ञापक पक्षका दोष है, कारकपक्षका नहीं। आप घडीके पुर्जोंके कार्योंको नहीं जाने या पेटमें जमाळगोटाके व्यापारको न जाने, मत जानो, काम करनेवाळे निमित्त अपने अपने कार्योंमें जुट रहे हैं। कदाचित् शीतवायु लग जाती है, महीनोंतक ज्वर वेदना भोगनी पडती है, मरणतक हो जाता है। कृष्ण सर्प द्वारा काटे गये दो मनके शरीरमें सरसों बराबर विषके जौहरको निरखिये, रक्तका पानी बना देता है, हृदयगति बन्द कर मार डाळता है, शरीरको नीळ-वर्णकर फूटकी तरह खिला देता है। दृष्टापलाप आपको करना नहीं चाहिये। उक्त दृष्टान्तोंको कहनेका तात्पर्य यही है कि निमित्तोंको बडे बडे व्यापार करने पडते हैं। तब नैमित्तिकोंको बना पाते हैं। जान जोखिमके कार्योंको निमित्त कारण करें, और उपादान कारण पूरा यश लूट ले, और इनाम मिलनेके अवसरपर हाथ पसार देवें। इस डाकूपनको अष्टसहस्रीमें "अमूल्य-दानक्रयिन्" दोष कहा है। तपस्याके अनुसार फल प्राप्त होना चाहिये। निमित्तोंको इसमकी कारणता नहीं मिल जाती है। बडे बडे परिश्रम, तीव्र यातनायें, घोर तपस्यायें, करनी पडती हैं, तब कहीं कारकत्वकी डिग्री प्राप्त होती है।

अधोलिखित धार्मिक कृत्योंका अध्ययन कीजिये, कि धर्मात्मा जीवोंको दिनरात कितना परपदार्थोंका आश्रय पकडना पडता है।

प्रातः उठते ही हम, आप तथा मुनिजन सभी णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरिआणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। भावार्थ—वर्तमान कालीन चौवीस तीर्थंकर और विदेह क्षेत्रस्थ २० तीर्थंकर तथा आठ लाख अट्ठानवें हजार चारसौ व्यासी सामान्य केवली इन अरहन्तोंको नमस्कार हो। अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठियोंको नमस्कार होवे, तथा लोकमें ८,९१,०१,४९५ आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधुओंको नमस्कार हो। "ध्यायेत् पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते" जो पञ्च नमस्कार मन्त्रका ध्यान करेगा, वह सब पापोंसे छूट जायेगा "चत्तारि सरणं पव्वज्जामि" में अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म इन चारकी शरणको प्राप्त हो रहा हूं। "ऊर्ध्वाधोरयुत सबिन्दु सपरं, देव ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो" जो ऊपर नीचे 'र' से सहित बिन्दुसहित ऐसे ही, हँ, मन्त्रोंसे वाच्य सिद्धचक्रका ध्यान लगाता है, वह मुक्तिरमाका वल्लभ हो जाता है। "नमः श्री वर्द्धमानाय, अर्हमित्यक्षरं ब्रम्हवाचकं परमेष्ठिनः। सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह" यों भिन्न द्रव्य परमात्माओंका ध्यान करना बताया है। "ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः, द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ" दो गोरे, दो नीले, दो लाल, दो हरे, सोलह सुवर्ण वर्ण ये चौवीस तीर्थंकर हमें सिद्धि दे दो, "तव रूपस्य

किरणों बलभद्र नारायणकी मुकुटकिरणोंमें अनुप्रविष्ठ हो गई थी। भगवान् चन्द्रप्रभके शुभ्र शरीर कांति समुद्रमें असंख्य देव गर्क हो गये थे, मानु अपनेको पवित्र करनेके लिये क्षीरसागरमें स्नान कर रहे हैं। " मोक्ष मार्गस्य नेतारं भेत्तारं " भगवान् दूसरोंको मोक्षमार्गकी प्राप्ति करा देते हैं। (उमास्वामी आचाय)

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविन्दविन्दवन्दं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥

समवसरणमें आदीश्वर भगवान्ने जीव अजीव द्रव्योंका उपदेश दिया, तदैव सौ इन्द्र अथवा असंख्य इन्द्रोंने समुदित होकर भगवान् वृषभ नाथकी वन्दना की। 'पुनातु चेतो मम नाभिनंदनो' नाभिराजाके प्रिय नन्दन और मरुदेवी माताके लाल श्री आदीश्वर भगवान् मेरे मनको पवित्र करो, यों श्रीसमन्तभद्राचार्य विनति कर रहे हैं। ये कार्य, कारण, काल्पित नहीं, सत्यार्थ हैं।

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु सुकीर्तिरस्तु,।
सद्बुद्धिरस्तु घनधान्यसमृद्धिरस्तु ॥
आरोग्यमस्तु सुखमस्तु महोस्तु पुत्र—।
पौत्रोद्भवोस्तु तव सिद्धिपति प्रसादात् ॥

यशोनन्दी आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि सिद्ध भगवान्की पूजा करनेवाले श्रावककी दीर्घ आयु होओ, कल्याण होओ, अच्छा यश होओ, श्रेष्ट बुद्धि होओ, घन और धान्यकी वृद्धि

जिनचैत्यालय इन नौ देवताओंमें आठ देवता तो परपदार्थ ही हैं। हां, धर्मदेवता कुछ इधर हैं कुछ उधर हैं।

ये परद्रव्योंके विचारावलीरूप लम्बे ज्ञान अपूर्वार्थग्राही स्मृतिसमन्वाहार होते हुए सब धर्म्यध्यान हैं, रत्नत्रय हैं। ये आर्त, रौद्र ध्यान तो कथमपि नहीं है। क्योंकि इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वेदना, निदान, हिंसानन्द आदि दुर्ध्यानोंके लक्षण इनमें घटित नहीं होते हैं। शुक्ल ध्यान आजकल होता नहीं है। यों परिशेष न्यायसे पूजन, पाठ, स्तोत्र, जप, अनुप्रेक्षायें, ध्यान ये सब विचारावलि एकाग्रचिन्तानिरोधरूप हो जायं तो धर्म्य-ध्यान ही हैं। वैसे सामान्य ज्ञान हुए तो शुभभाव हैं, मोक्षमार्ग हैं, ध्यान नहीं हैं। क्योंकि ज्ञानोंकी लम्बी लैनको ध्यान कहते हैं। शुभभाव भी कर्म नाश करते हैं। आजकल उक्त ध्यान या शुभभाव ही बन जाय, तो क्या कम लाभ है? आर्त रौद्र ध्यानों के समुद्रमें दिनरात गोते खा रहा यह संसारी जीव यदि उक्त धर्म्यध्यान या शुभ भावोंमें रत हो जाय, यही नरभवकी बडी भारी कमाई है। इन करके संवर निर्जरा होते हैं, जो कि निकट मुमुक्षुके होने ही चाहिए। हां शुभप्रवृत्ति अंशोंसे स्वल्प पुण्य बन्ध भी होगा, उसे भी भुगतेंगे, मोक्ष जानेकी शीघ्रता नहीं है। महातीर्थराज सम्मेदशिखरकी वन्दना करनेवाला यात्री ललितकूटपर जाकर भगवान् चन्द्रप्रभकी पूजन करता है, और ध्यान लगाता

ये समन्तभद्र भगवान्‌के कहे गये कार्य, कारण, सत्यार्थ हैं, यह कोई निदान नहीं। निदान भी पांचवे गुणस्थानतक पाया जाता है। फिर मुनियोंके कार्य कैसे बनें?

"तत् किं चित्रं जिनवपुरिदं यत् सुवर्णीकरोषि"

(एकीभावस्तोत्र)

जैसे मन्त्रसे बिच्छूका जहर उतर जाता है, तद्वत् इन स्तुतियोंसे सुवर्णशरीर हो जाना अनिवार्य है।

विषापहारं मणिमौषधानि,
मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति,
पर्यायनामानि तवैव तानि।
वितरति विहिता यथा कथंचि—
ज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः। (विषापहार)

यों इधर महाविद्वान् धनञ्जयजी अखण्ड जिनेन्द्र स्तुति करते हैं, और उधर सर्पदष्ट लडका निर्विष हो रहा है। इसमें कोई मिथ्यात्वकी गन्ध नहीं है।

" त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषं "
" मत्तद्विपेन्द्र मृगराजदवानलाहि—"

औषधि, आयतन, जिनम्बिब, गुरुजी इत्यादि सब निमित्त कारण हैं। निमित्त, उपादान आदि नियमित सामग्रीसे अव्यवहित उत्तर क्षणोंमें कार्य बन जाता है। अकेले उपादानसे, या केवल निमित्तसे, अथवा मात्र द्रव्य, क्षेत्र,कालोंसे अथवा केवल उदासीन कारणोंसे कार्य नहीं बन पाता है। अन्वय व्यभिचार, व्यतिरेक व्यभिचार दोष लग बैठेंगे। हां, नैयायिक विद्वानोंके मन्तव्यानुसार अन्तिमकारण सामग्रीसे कार्योत्पत्ति हो जानेमें कोई दोषापत्ति नहीं है। अतः श्री समन्तभद्राचार्य तथा तदीय शिष्योंकी आचार्य परंपरासे निर्मित प्रामाणिक ग्रन्थोंके अनुकूल नियमित कार्य, कारण, भावका श्रद्धान करना चाहिये। एकान्तको पकडके बैठ जाना स्याद्वाद सिद्धान्तके प्रतिकूल है। हां, यदि कोई केवल निमित्तासे ही कार्य सिद्ध हो जाना अभीष्ट करते हैं, उपादानको अकिञ्चित्कर कहते हैं, उनके प्रति उपादान कारणकी मुख्य विवक्षासे सिद्धि कर दी जाती है " विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था " प्रतिवादीके सन्मुख वादी विवक्षितको मुख्यरूपेण सिद्ध कर देता है। यों स्वकीय स्वल्पमतीयानुसार कारणोंकी शास्त्रानुसार मीमांसा की गयी है। एक समानधर्म पुरुषका साधर्मी बंधुओंके प्रति कोई रागद्वेषका भाव नहीं है। उच्च वात्सल्य है। यदि प्रमादवश कोई अप्रिय, कटु, असभ्य शब्दका प्रयोग हो गया [illegible] विद्वज्जन हंसक्षीरन्यायसे सारभागको ग्रहण करें ऐसा निवेदन है।